धर्मायण

धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका

अंक : 76 (संयुक्तांक)

वैशाख-आश्विन, 2065

अप्रैल-सितम्बर, 2008 ई0

सम्पादक-मण्डल

प्रो0 काशीनाथ मिश्र

महन्त उद्धवदासजी

डा0 श्रीरंजन सूरिदेव

आचार्य किशोर कुणाल

प्रधान सम्पादक

भवनाथ झा

महावीर मन्दिर प्रकाशन

के लिए

प्रो0 काशीनाथ मिश्र

द्वारा प्रकाशित

तथा

प्रकाश ऑफसेट, पटना में मुद्रित

पत्र-सम्पर्क:

धर्मायण,

पाणिनि-परिसर,

बुद्ध-मार्ग,

पटना-800001

दूरभाष – 0612-2207725

E-mail: mahavirmandir@sify.com

मूल्य : **दस रुपये**

विषय-सूची

* **पुराणों में रामविषयक सन्दर्भ**
डॉ. शिववंश पाण्डेय 06

* **राम, रामायण और राम-सेतु की पुरातनता**
डॉ. तपेश्वर नाथ 12

* **मर्यादापुरुषोत्तम राम की ऐतिहासिकता**
आचार्य किशोर कुणाल 17

* **भजन और श्रीमद्भागवत-महापुराण**
डॉ. सीताराम झा 'श्याम' 25

* **राजा बलि की दानशीलता**
डॉ. जयनन्दन पाण्डेय 36

* **भक्त कवि नरोत्तम दास**
युगल किशोर प्रसाद 41

* **संस्कृत-साहित्य में बाल-हितैषणा के तत्त्व**
साहित्यवाचस्पति डॉ0 श्रीरंजन सूरिदेव 47

* **सत्य साईं**
डॉ. एस.एन.पी. सिन्हा 51

* **श्री पार्वती गीता : एक अनुशीलन**
डॉ. राजेन्द्र झा 57

* **कीट्स-काव्य और कामायनी**
डॉ. अशोक कुमार 'अंशुमाली' 64

* **मैथिली भक्ति लोकगीतों में जीवन-दर्शन**
डी0 आर0 ब्रह्मचारी 69

* **वाणी एवं चरित्र**
प्रो0 रामाश्रय प्रसाद सिंह 72

सम्पादकीय

लोकरत्न ज्योतिर्विद् डाक

उत्तर बिहार के प्रसिद्ध मिथिला-क्षेत्र में 'गोआर' कुल में जन्मे एक गृहस्थ ने ज्योतिष शास्त्र में ऐसी विद्वत्ता पायी कि उन्होंने न केवल अपनी भविष्यवाणियों से कृषि एवं अन्य सामाजिक क्षेत्रों में लोगों का मार्गदर्शन किया अपितु परवर्ती धर्मशास्त्रियों और ज्योतिषियों द्वारा सम्मानपूर्वक उनके निबन्धों में उद्धृत होने का गौरव भी प्राप्त किया।

ऐसे दलित विद्वान् के नाम के सम्बन्ध में विद्वानों के बीच मतभेद है। कुछ विद्वान् इनका नाम 'भड्डरी' मानकर उन्हें राजस्थानी सिद्ध करते हैं तो कुछ 'घाघ' मानकर उत्तर प्रदेश के अवध क्षेत्र में उत्पन्न मानते हैं तथा कुछ 'टंक' नाम मानकर बंगाल क्षेत्र के मानते हैं। मिथिला क्षेत्र में इनका नाम 'डाक' है।

लोक-परम्परा को छोड़कर लिखित शास्त्रीय परम्परा का अनुसरण करने पर ज्ञात होता है कि 15वीं शती में मिथिला के प्रसिद्ध कवि विद्यापति के पुत्र महामहोपाध्याय हरपति ने अपने ग्रन्थ 'व्यवहार प्रदीप' में 'डाक' के 21 वचनों को उद्धृत किया है जिनमें 8 वचनों में डाक नाम का उल्लेख इस प्रकार किया गया है-

सिद्धियोग (तथा च डाकः)-

नवञी चौठि चौदशि भउ षोड़े, पड़िव एकादशि छठि कवि जोड़े।
तिअ अट्ठञि तेरसि भूपुत्ते, सओञि दुइ दो आदशि वा उत्ते।
पाँचञि पुनिमा दशञि बेहप्फय, सिद्धियोग एहु मुनिवर जम्पए।।

पशुयात्रा विचार (तत्र डाकः)-

तिन्निओ पूव्व मृगसनि ज्येष्ठा, भरणि विशाष (ख) अशलेस धनिष्ठा।
चालिअ चौपा होइह वृद्धी, जत्तहि चालिअ तत्तहि सिद्धी।।

नवान भक्षण (तथा च डाकः)-

अस्सनि रेवए अवर धनिट्ठा, हत्थ आदि कए पाचम खण्डा
एकरा उत्तर दुइ गुर मन्त्री, कापल परिहह न करह भन्ती।।
संखा सो (ना?)- परहह रत्ता, वरषा शत एक जीवतु कन्ता।।
पुष्य पुनर्वसु परिहरह रोहिणी पालह बञ्ज,
तीनि उत्तर परिहरह जइ भत्तारे कञ्ज।।

अरिषट्क लक्षण (तत्र डाकः)-

धनु बृष बृश्चिक मृगमानी, भरण करा अरिषट्क जानी।

15वीं शती के उत्तरार्द्ध में म0म0 वटेश्वर के पुत्र म0म0 पशुपति ने भी 'व्यवहार रत्नावली' में डाक के वचनों को उद्धृत किया है। पुनः 17वीं शती में म0 म0 शुभंकर ठाकुर कृत 'तिथिद्वैधनिर्णय' तथा

ज्योतिष शास्त्र के अन्य ग्रन्थ 'ग्रामवास विचार' तथा 'प्रकीर्ण' में भी डाक के वचन को प्रमाण के रूप उद्धृत किया गया है। मिथिला क्षेत्र से प्राप्त एक तालपत्र पर लिखी हुई 'विक्रमोर्वशीयम्" की प्राचीन पाण्डुलिपि के खाली पृष्ठ पर भी डाक के कुछ वचन उपलब्ध हुए हैं। इस प्रकार शास्त्रीय परम्परा में इस दलित विद्वान् का नाम 'डाक' माना गया है।

यद्यपि 'डाक' नाम व्यक्तिवाचक संज्ञा प्रतीत नहीं होता। मैथिली और बंगला में 'डाक' शब्द का अर्थ है 'घोषणा'। 'मैथिली में 'डाकनि' जोर से पुकारने के अर्थ में प्रयुक्त है तो कवीन्द्र रवीन्द्र की प्रसिद्ध कविता 'यदि तोर डाक केओ सुने ना आशे तबै एकला चलो रे' में डाक शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त है। इसी प्रकार 'घाघ' भी पण्डित के अर्थ में जातिवाचक संज्ञा है। अवध क्षेत्र की परम्परा के अनुसार भी 'घाघ' अहीर जाति के थे। इन साक्ष्यों के आधार पर यह प्रतीत होता है कि इस दलित विद्वान् का कोई अन्य नाम रहा होगा, जिनका वचन 'घोषणा' के अर्थ में डाक के नाम से मिथिला में प्रसिद्ध हुआ और घाघ के नाम से अवध क्षेत्र में। लिखित परम्परा के आधार पर इतना तो अवश्य निश्चित है कि गोआर जाति के एक ज्योतिषी मिथिला की परम्परा 15वीं शती से पूर्व अवश्य हुए थे, जिन्होंने ब्राह्मणवाद की दीवार को तोड़कर ज्योतिषशास्त्र को सर्वजन-सुलभ कराया। इसलिए यहाँ हमने 'डाक' नाम का उल्लेख किया है।

प0 रामनरेश त्रिपाठी के सम्पादन में 1934 ई0 में 'घाघ और भड्डरी' के नाम से एक पुस्तक का प्रकाशन किया गया जिसमें उन्होंने इन वचनों के प्रणेता को जनश्रुति की परम्परा के आधार पर अवध क्षेत्र में उत्पन्न माना है। किन्तु 15वीं शती से प्राप्त शास्त्रीय परम्परा में इस दलित ज्योतिषी का जन्मस्थान मिथिला क्षेत्र में सिद्ध होता है। म0म0 हरपति के ग्रन्थ में उद्धृत वचनों में से एक वचन एक दिन में 12 राशियों के भोग्यकाल की स्थानीय गणना से सम्बद्ध है। यह इस प्रकार है-

राशि-स्वभाव विचार-

मेष-मीन तिअ दण्डा दीअ, ता उप्परि दिअ पल अठतीस।
वृष-कुम्भ चौदण्डा मान, पल एगारह भुगुतिअ मान।।
मिथुन मकर पल तीनि गुनू, कर्कट तेतालीस धनू।
सिंहाहे वृश्चिक सप्ततलीस, तुल सह कन्या पल अठतीस।।
मिथुना सञो मोञे सब पल कहिञे।
पाँचे दण्डे सबे पल लहिअ।।

यह मिथिला क्षेत्र के अक्षांश एवं देशान्तर के आधार पर छः अंगुल पलभा के अनुसार मानित राशियों के भोग्यकाल की गणना पद्य के रूप में है। व्यवहार-ज्योतिष में स्थानीय परम्परा के प्रबल पक्षधर मैथिल निबन्धकारों के द्वारा प्रमाण के रूप में उद्धृत होना भी 'डाक' को मैथिल सिद्ध करने के लिए प्रबल साक्ष्य है।

डाक ने अपने वचनों में स्वयं को 'गोआर' कहा है। इसकी गणना शूद्रों की श्रेणी में होती है। म0 म0 हरपति द्वारा उद्धृत निम्नलिखित वचन में 'गोआर' का स्पष्ट उल्लेख है।

1- गर्भापत्य जिज्ञासा (अपरञ्च डाकः)

अख्खर दोगुण चौगुण मत्ता, भाग हरि बूउ जत्ते वेत्ता।
चल उज्जारे नाव इकारे एहू धनी *फूर कहल गोआरे।।*

2- यमघण्ट विचार-

जइ रविवारे मघा धनिष्ठा सोमे पुण्य विशाषा (खा) लट्ठा।
मंगल कृत्तिक भरिण विरुद्धा, कर पूवफल्गुनी बुध विरुद्धा।।
वारे बेहप्फइ मूल रेवती, शुष्क (क्क) हि बारहि रोहिनि स्वाती।
श्रवण शतभिश जइ शनिवारे, एहु यमघन्ट *कहिअ गोआरे*।।

इस के अतिरिक्त लोक-परम्परा से संकलित सूक्तियों में भी कई वचनों में गोआर जाति का उल्लेख हुआ है–

बर्षसुद्धि कह *डाक गोआर*, पाँच सौओ सातहु करी विचार।(उपनयन विचार)
सोई तरु पुनि नगर मझार, ताहि सुखद कह *डाक गोआर*।(शुभाशुभ-वृक्ष-फल)

कहीं कहीं तो 'भनिता के रूप में केवल जाति सूचक 'गोआर' शब्द का ही उल्लेख कर दिया गया है।

रविया रविसुत ओ अंगार, पूस अमावस कहल *गोआर*।(अकाल का पूर्वानुमान)

जैसा कि अनेक दलित-सन्तों और राजाओं के सन्दर्भ में उनके उच्च कुल के साथ सम्बद्ध करने के लिए जनश्रुतियाँ गढ़ी गयी उसी प्रकार डाक के सम्बन्ध में भी जनश्रुति चल पड़ी कि ये वराहमिहिर और एक ग्वालिन के संयोग से उत्पन्न हुए। इस प्रकार की जनश्रुतियाँ अक्सर गढ़ी गयीं है अतः इन्हें प्रामाणिक नहीं माना जा सकता है किन्तु इतना अवश्य निहितार्थ है कि लोक परम्परा भी इन्हें 'ग्वाला' मानती हुई शास्त्रीय दृष्टि से 'वराहमिहिर' के समान आदरणीय विद्वान् मानती रही है।

डाक के वचनों के कई संकलन अबतक प्रकाशित किये गये हैं। सर्वप्रथम प० कपिलेश्वर झा द्वारा 'डाक-वचनामृत' के नाम से 1924 ई0 में श्री रमेश्वर प्रेस दरभंगा से प्रकाशित किया गया। इस संकलन में लोककण्ठ से संगृहीत वचनों का सम्पादन किया गया। बाद में 1950 ई0 में दरभंगा राज के संस्कृत पुस्तकालय के सहायक अध्यक्ष प० जीवानन्द ठाकुर ने प्राचीन पाण्डुलियों में उद्धृत एवं लिखित वचनों का संकलन एवं सम्पादन कर प० कपिलेश्वर झा द्वारा सम्पादित अंश के साथ 'विशुद्ध डाकवचन' के नाम से सम्पादित किया जिसका प्रकाशन 'मैथिली साहित्य परिषद्' द्वारा किया गया। कुछ ही दिनों में इस ग्रन्थ के अनुपलब्ध होने के बाद 1995 ई0 में 'तन्त्रवती गीता भवन' राँटी, मधुबनी से प्रकाशित मैथिली अर्द्धवार्षिक शोध-प्रधान पत्रिका 'जिज्ञासा' में इसका पुनः प्रकाशन हुआ जिसके साथ प० गोविन्द झा द्वारा 'डाक' के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर गम्भीर विवेचन भी प्रस्तुत किया गया। 2000 ई0 में प० शशिनाथ झा ने भी इस कार्य को आगे बढ़ाते हुए कुछ अन्य स्रोतों से भी डाक वचनों को संकलित कर अनुवाद के साथ सम्पादित किया, जिसका प्रकाशन उर्वशी प्रेस पटना से हुआ।

डाक के वचनों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि वे ज्योतिष शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे। उन्होंने न केवल विवाह, उपनयन, गृहारम्भ, यात्रा, शकुन, वर्षा आदि जनोपयोगी विषयों पर विचार किया है बल्कि गणित ज्योतिष से सम्बद्ध लग्नोदय, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण आदि विषयों पर सूत्र रूप में वचन प्रस्तुत किया है। ग्रहण के सम्बन्ध में पण्डितों द्वारा खड़ी घिसकर बड़ी बड़ी गणनाओं को व्यर्थ बतलाते हुए वे कहते हैं-

रवि सँ चन्दा सात में राहु सँ हो एकन्त।
तखन गहना लागिहे कथी लए खड़ी घसन्त।।

जाहि नखत्ते रवि तवै तासु अमावस होय।
किछु किछु पड़िबा संचरै सूर्यपर्व तब होय।।

ज्योतिष शाास्त्र को संस्कृत भाषा एवं ब्राह्मणों के चंगुल से मुक्त कर सर्वजन सुलभ बनाने में डाक की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। उन्होंने प्रायः सभी ऐसे व्यावहारिक विषयों पर जनभाषा में अपना वचन प्रस्तुत किया है, जिसके आधार पर सामान्य जन भी स्वयं मुहूर्त आदि का निर्णय कर सकें। सिद्धियोग, यमघण्ट विचार, दग्धतिथि, राहूदय, योगिनी विचार, पशुयात्रा, तारा विचार, मुण्डन, कर्णवेध, अक्षरारम्भ, उपनयन, विवाह, द्विरागमन, वधूप्रवेश, वास्तु विचार, आदि विषयों का विवेचन किया है। इसके अतिरिक्त कृषि से सम्बद्ध गणनाओं में हल खड़ा करना, बैल खरीदना, बैलों के लक्षण, हलचक्र, बैल की चेष्टाएँ, खेत जोतना, धान का बिचड़ा लगाना उसे फिर खेत में लगाना आदि क्रिया-कलापों के लिए ज्योतिषशास्त्र की दृष्टि से मुहूर्तों की गणना की है। श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन बादल की स्थिति देखकर देवोत्थान एकादशी के आसपास वर्षा का पूर्वानुमान करते हुए डाक कहते हैं-

साओन सुक्ला सप्तमी छपि के ऊगहि भान।
तौं लगि मेघा वरिसए जौओ लगि देवउठान।।

उन्होंने कई वचनों में इस तिथि को वर्षा होने या मेघ लगने पर उस वर्ष में पर्याप्त वर्षा का पूर्वानुमान करते हुए अधिक अन्न उपजने की बात कही है। इसी प्रकार चैत्र मास के किसी पक्ष में त्रयोदशी तिथि शनिवार के दिन पड़ने पर उस वर्ष रौदी की संभावना व्यक्त की है-

चैत त्रयोदशी शनिक योग नहि हो अन्न डाक के भोग।

डाक ने हमेशा जनहित केलिए अपने वचन दिये हैं। उन्होंने लोगों की आजीविका के लिए खेती को प्रथम, पशुपालन को द्वितीय तथा वाणिज्य को तृतीय स्थान दिया है–

धनमे धान आओर धन गाय। किछु कुछु सोन और सब छाय।।

डाक की दृष्टि में जीवन में संयम सबसे महत्त्वपूर्ण है–

खयनहु मरी बिन खचनहु मरी। कहथि डाक जे संयम करी।।

वे ऊँची एवं निचली जमीन पर एक साथ खेती करने का सुझाव देकर उसे संयुक्त परिवार के समान महिमामण्डित किया है–

ऊँचे नीचे करी चास। भाई भतीजे करी वास।।

डाक ने हाथ पर हाथ धरकर बैठनेवालों की भर्त्सना कर श्रम के महत्त्व पर जोर दिया है–

घर बैसल जे बनबथि बात, देहमे वस्त्र ने पेटमे भात।

डाक के इन वचनों की भाषा के सम्बन्ध में यह महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि ये अधिकांश वचन लोककण्ठ में सुरक्षित रहे हैं; अतः इनकी भाषा कालक्रम से परिवर्तित होती गयी है। किन्तु लिखित स्रोतों से संकलित वचनों की भाषा सुरक्षित है, जिसके आधार पर इसे अवहट्ठ माना गया है।

◈

पुराणों में रामविषयक सन्दर्भ

▶ *डॉ. शिववंश पाण्डेय*

लौकिक दृष्टि से पुराण साहित्य वस्तुतः प्राचीन काल से चली आ रही लोकप्रसिद्ध कथाओं के क्रमिक विकास का आलेखन है, जो विभिन्न कालों में विभिन्न स्थानों पर लिखे गये हैं। इस प्रकार पुराणों में वर्णित कथाएँ महज पुराण-निर्माण काल की कथाएँ नहीं हैं; बल्कि उससे बहुत प्राचीन हैं। ये जन-जन में व्याप्त हैं। इन पुराण कथाओं में बहुशः मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की कथा है। भले बाह्य स्तर पर इन कथाओं में परिवर्तन-परिवर्द्धन होते रहे हैं; किन्तु मूल तथ्य एक समान है। विभिन्न पुराणों की कथाओं में यह अद्भुत समानता रामकथा को तथ्यपरक और ऐतिहासिक सिद्ध करने में समर्थ है। विविध पुराणों से राम विषयक सन्दर्भ यहाँ संकलित कर रहे हैं साहित्यकार डा0 शिववंश पाण्डेय।

संस्कृत भाषा में रामकथा का अवतरण महर्षि वाल्मीकि के पूर्व कब हुआ, इसकी निश्चित जानकारी नहीं उपलब्ध होती। यों तो वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषदों में राम की कथा उपलब्ध होती है पर टीकाकारों की मत-भिन्नता के कारण उसे यथार्थ अभिधा के रूप में लेना विवादास्पद है।

कुछ प्रमुख पुराणों के अवलोकन से मालूम होता है कि रामकथा के मनोमुग्धकारी रूप से पुराणकारों ने भी अपने को अलग नहीं रखा है। विभिन्न पुराणों में श्रीराम के विविध रूप चित्रित हैं। इस प्रसंग में यह कहना भी अनुपयुक्त नहीं होगा कि राम के चरित वर्णन में पुराणकारों की दृष्टि विशेषतया उनके अलौकिक रूप पर ही अधिक रही है। फिर भी इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि उनके पार्थिव रूप की व्यंजना भी पुराणों में बड़े विशद रूप में हुई है। उनके पार्थिव रूप की चर्चा के क्रम में पुराणकारों की दृष्टि में राम का आदर्श राजा, आदर्श पति, आदर्श भाई एवं अनन्य सखा का रूप अधिक निखर सका है। कुछेक पुराणों में तो उनके शारीरिक तेज और सौन्दर्य का बड़ा ही सम्मोहक रूप देखने को मिलता है। राम के साथ लक्ष्मण, भरत के साथ शत्रुघ्न को भी पुराणकारों ने बार-बार स्मरण किया है। सबसे बड़ी विलक्षण बात तो पुराणों में यह देखी जा सकती है कि पुराणकारों का निश्चित मत है कि अपने अंश स्वरूप भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न सहित अवतार लेकर राम ने धरती का जितना क्लेश दूर किया उससे अधिक लोगों का कल्याण इनके नाम-स्मरण से ही हुआ है। स्पष्ट है कि पुराणकारों ने क्रमबद्ध रूप से राम की कथा भले ही लिखना पसंद न किया हो किन्तु वे इतना मानकर चलते रहे हैं कि जब पापियों के बोझ से पृथ्वी व्याकुल हो रही थी तो उस समय परमब्रह्म परमेश्वर को स्वयं ही यहाँ पर अवतीर्ण होना पड़ा। सब मिलाकर कहना चाहिए कि उनका अलौकिक तेज नर शरीर धारण करने पर भी उनके नारायण रूप का स्मरण मानवों को निरन्तर कराता रहा।

पुराणों की संरचना को 'आख्यान' का नाम दिया जा सकता है, जिसमें दृष्टान्त के रूप में पात्रों के चरित्र और गुण का वर्णन होता है। रामकथा को आख्यान के रूप में प्रस्तुत कर पुराणों में चरित्र की महत्ता या नाम की उपादेयता का वर्णन हुआ है। पुराणकारों का मुख्य

उद्देश्य भाव की प्रतिष्ठा करना है। छान्दस वाङ्मय में जहाँ रूप को और प्रतीकों के माध्यम से कथा का भाव व्यक्त किया गया है वहाँ पुराणों में स्पष्ट रूप में राम के गुणों का कथन हुआ है। पुराणों में रामकथा के उदात्त अंशों को ही ग्रहण किया गया है। इसमें राम के नाम का माहात्म्य ही प्रमुख रूप से प्रतिपादित हैं।

पुराणों की संख्या अठारह मानी गई है। ये हैं- विष्णुपुराण, पद्मपुराण, ब्रह्मपुराण, वायुपुराण, भागवत पुराण, नारदपुराण, मार्कण्डेय पुराण, अग्निपुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, लिंगपुराण, वराहपुराण, स्कन्दपुराण, वामन पुराण, कूर्मपुराण, मत्स्यपुराण, गरुड़पुराण, ब्रह्माण्डपुराण और भविष्य पुराण। इनके अतिरिक्त शिवपुराण और श्रीमद्देवीभागवत को भी महापुराण की प्रतिष्ठा प्राप्त है। विष्णुपुराण, अग्निपुराण, भागवत पुराण और देवीभागवत महापुराण में रामकथा एवं रामविषयक सन्दर्भ मिलते हैं। क्रमशः इनपर दृक्पात किया जा सकता है।

विष्णु-पुराण

दार्शनिक दृष्टि से यदि भागवत पुराणों में प्रथम स्थान पर रखा जाता है तो विष्णुपुराण निश्चय ही द्वितीय स्थान पर रखे जाने की अर्हता रखता है। यह वैष्णव दर्शन का बीजाधार है। आकार में छोटा (खण्ड छह एवं अध्याय १२६) होते हुए भी यह काफी महत्त्वपूर्ण माना गया है।

इस पुराण में राम और उनके अन्य तीन भाइयों का विस्तार से उल्लेख हुआ है। विष्णुपुराण (चतुर्थ अंश १००-१०१) में लिखा है कि राम के अंश स्वरूप भरत ने भी गंधर्वलोक को जीतने के लिए तीन करोड़ गंधर्वों का वध किया और उनके दूसरे अंश स्वरूप शत्रुघ्नजी ने भी अतुलित बलशाली महापराक्रमी मधुपुत्र लवण राक्षस का संहार किया। इसी पुराण के एक स्थल (चतुर्थ अंक १०३) पर इस बात का उल्लेख है कि राम के स्नेहानुरागी अयोध्यावासियों को भी सालोक्य मुक्ति प्राप्त हो गई।

स्पष्टतः इन दोनों प्रसंगों के उल्लेख द्वारा विष्णुपुराणकार ने श्रीराम की महनीय उदारता और उनके अलौकिक सामर्थ्य को ही जग-प्रकाशित करना चाहा है।

अग्निपुराण

इस पुराण के विषय में स्वयं विष्णुपुराण ने लिखा है- 'आग्नेये हि पुराणेऽस्मिन् सर्वाः विद्याः प्रदर्शिता'' (चतुर्थ अंक १०३) अर्थात् यह पुराण सभी विद्याओं का प्रदर्शक है। ३८३ अध्यायों में प्रसृत इस पुराण में अवतार की कथाओं का संक्षिप्त वर्णन करते हुए रामायण और महाभारत की कथा को पर्याप्त विस्तार दिया गया है।

दुष्टों का दलन ही रामावतार का हेतु माना गया है और कहा गया है कि रावणादि राक्षसों का वध करने के लिए ही स्वयं भगवान विष्णु ने चार रूप से दशरथ के घर में अवतार लिया (अग्निपुराण ३८३/५२) अग्निपुराण में श्रीराम के उदात्त चरित्र का महत्त्वांकन करते हुए लिखा है कि वे धर्मपूर्वक प्रजा का पालन पिता के समान करते थे। दुष्टों में संहार में निरन्तर लगे रहते थे। उनके राज्य में पैदावार प्रचुर मात्रा में होती थी। उनके पवित्र आचरण और पुण्य का ही फल था कि उनके राज्य में किसी की अकाल मृत्यु नहीं होती थी (चतुर्थ अंक, १०)।

पद्मपुराण

परिमाण में स्कन्दपुराण के बाद इसी पुराण का स्थान है। इसकी श्लोक बारह हजार कही गई है पर क्रमशः यह बढ़ती-बढ़ती ५४ हजार हो गई है। यह पुराण विष्णु भक्ति का प्रतिपादक सबसे प्राचीन पुराण है। इसके 'पाताल' खण्ड में रामकथा का उल्लेख है। इसमें वर्णित रामकथा कालिदास कृत 'रघुवंश' और भवभूति रचित 'उत्तररामचरित' से बहुत मिलती-जुलती है।

पद्मपुराण में यह विश्वास व्यक्त किया गया है कि जो भी राम की कथा भक्तिपूर्वक श्रवण करता है वह ब्रह्म-हत्यादि जैसे जघन्य पापों से मुक्त हो मोक्षप्राप्ति का अधिकारी बन जाता है (पाताल खण्ड ६८/२७)। इसी खंड के अगले श्लोकों (६८/२८-३६) में ही कहा गया है कि पद्मपुराण के श्रोता भक्त को पुत्र, धनादि की

प्राप्ति के साथ रोग से मुक्ति और कैद के बन्धन से छुटकारा भी प्राप्त हो जाता है। रामकथा की महिमा का बखान करते हुए पद्मपुराणकार कहते हैं कि जिस रामकथा के श्रवण से श्वपच भी परम पद प्राप्त कर लेता है तब रामभक्ति-परायण शिष्ट द्विजों के लिए क्या कहना! (पाताल खण्ड ६८-२६)

पद्मपुराण के उत्तर खण्ड २४३, श्लोक ३६ में रामनाम की महिमा के प्रभाव का उल्लेख करते हुए भगवान शंकर कहते हैं कि भवानी के सहित संसार में जो मैं पूज्य बना हूँ वह श्रीराम के प्रभाव से ही हुआ है। पुराण के कलकत्ता सौर संस्करण, क्रियायोगसार-खण्ड में लिखा है कि यमराज ने अपने दूतों से कहा कि जो भी रामनाम रूपी दो अक्षर मन्त्र का जाप करता है, उसको मैं दण्ड नहीं दे सकता, उसका न्याय स्वयं नारायण करते हैं। इसी खण्ड के श्लोक सं. १५/६६ में यह आया है कि महान् पापी भी यदि मरते समय राम के नाम का उच्चारण कर दें तो उसे मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

पुराण के पाताल खण्ड अध्याय १०५ श्लोक संख्या ४६-५२ में श्रीराम के मर्यादा पुरुषोत्तम रूप और उनके असीम धैर्यवान् शक्ति का प्रसंग वर्णित है। हुआ यह कि एक बार अयोध्या का राजा रहते हुए श्रीरामजी घूमते हुए स्वर्ग पहुँच गए। वहाँ लक्ष्मीजी उनपर कटाक्ष करने लगी। लक्ष्मीजी की इस चेष्टा को देखकर श्रीराम नतमस्तक हो गए इसलिए कि वे एक जानकीजी को छोड़कर शेष स्त्रियों को माँ कौशल्या के समतुल्य मानते थे। पुराण के पातालखण्ड के ही अध्याय १०४ श्लोक सं. १४६-१५० में श्रीराम के अनन्य-सेवकप्रेम की चर्चा आयी है। भक्त विभीषण के एक अपराध पर ब्राह्मणों ने उन्हें जमीन में गाड़ दिया। श्रीराम ने जाकर ब्राह्मणों से प्रार्थना की और कहा कि सेवक के अपराध करने पर अपराध का दण्ड स्वामी को ही दिया जाता है। अतः विभीषण को छोड़ यह दण्ड मुझे दीजिए।

श्रीराम के अलौकिक रूप की वंदना भी इस पुराण में कई स्थलों पर की गई है। एक स्थल पर तो भगवान् शंकर ने प्रार्थना करते हुए कहा है- ''हे सीतारामजी, आप नित्यमूलक प्रकृति, नित्य परमात्मा, सच्चिदानन्द स्वरूप, विश्वरूप, विधाता, निरंतर आनन्दकन्द, विष्णुजगत्रय, कृतानन्द, आनन्दमूर्त्ति और दिव्यमूर्त्ति हैं। आपके लिए बारम्बार मेरा प्रणाम है।'' (डॉ. गणेश नारायण सिंह- राम काव्य का स्वरूप विकास पृ. ५७-५८ द्रष्टव्य)

ब्रह्मपुराण

२४५ अध्याय और लगभग १४ हजार श्लोक वाले इस पुराण में राम को एक आदर्श राजा के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। ब्रह्मपुराण २२३/१२५ में लिखा है-

कृत्वात्मानं महाबाहुश्चतुर्धा प्रभुरीश्वरः।
लोके राम इति ख्यातस्तेजसा भास्करोपमः।।

इसी पुराण के अध्याय २२३/२१६ में राजा राम के प्रभाव का चित्रण करते हुए कहा गया है कि जब राम राज्य कर रहे थे उस समय कहीं अशुभ शब्द नहीं सुनाई देता था। उनके राज्य में किसी के प्रतिकूल वायु नहीं बहती थी। चोरी के भय से सभी मुक्त थे। उस समय न कोई विधवा होती थी और न किसी प्रकार का अनर्थ होता था। सर्वत्र शुभ ही होता था। अध्याय २२३/१४८ में उल्लिखित है कि जल, अग्नि, वायु आदि के घात से किसी प्राणी को भय नहीं था अर्थात् किसी की असमय मृत्यु नहीं होती थी और किसी वृद्ध के जीवन में किसी बालक की अन्त्येष्टि का अशुभ अवसर कदापि नहीं आता था।

गरुड पुराण

अठारह हजार श्लोक और २६४ अध्याय वाले गरुड-पुराण के आरम्भ भाग में विष्णु तथा उनके अवतारों के माहात्म्य का वर्णन है। अध्याय १४३ के श्लोक १२-१५ में रामजन्म से लेकर रावण वध तथा विजय के बाद अयोध्या लौटने तक की कथा का विशद वर्णन हुआ है।

वायु पुराण

यह पुराण बहुत प्राचीन है। उसमें ११२ अध्याय तथा लगभग ११ हजार श्लोक हैं। इस पुराण में चार खण्ड हैं जो 'पाद' कहलाते हैं। ये हैं- प्रक्रिया पाद, अनुषंग पाद, उपोद्घात पाद तथा उपसंहार पाद।

श्रीराम का बड़ा ही मनोहारी वर्णन वायुपुराण में हुआ है। उनके रूप का वर्णन करते हुए पुराणकार ने अध्याय ८८ श्लोक संख्या १२ में कहा है कि अरुण कमल नयन, श्यामसुन्दर मुख, सिंह स्कन्ध, मांसल भुजा वाले श्रीराम सदा एकरस युवा रहते हैं। कहते थोड़ा करते बहुत हैं। इसी अध्याय के श्लोक १९७ में लिखा है कि दाशरथि श्रीराम रावण को मारकर अपनी सम्पूर्ण प्रजा सहित इसी शरीर से अपने धाम को चले गए।

लिंग पुराण

१६३ अध्यायों में विरचित इस पुराण के दो भाग हैं- पूर्व भाग और उत्तर भाग। इस पुराण का केवल एक स्थल यहाँ उद्धृत करना चाहेंगे जिसमें श्रीराम का एक साथ लोक विख्यात, धर्मज्ञ, वीर प्रजापालक, परोपकारी और दुष्ट संहारक आदि विभिन्न रूपों में प्रतिष्ठित किया गया है-

रामो दशरथाद्वीरो धर्मज्ञो लोकविश्रुतः।
भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्च महाबलः।।
तेषां श्रेष्ठो महातेजा रामः परमवीर्यवान्।
रावणं समरे हत्वा यज्ञैरिष्ट्वा च धर्मवित्।।
दशवर्षसहस्राणि रामो राज्यं चकार सः।
रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यभिविश्रुतः।।
(पूर्वार्द्ध ६६/३५-३७)

अर्थात् राम ने भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न सहित समस्त जगत् का कल्याण किया है। वे अनेक यज्ञों का अनुष्ठान कर ग्यारह हजार वर्ष तक राज्य करने के पश्चात् प्रजासहित अपने लोक को चले गए। लिंग पुराण का यह स्थल रामाख्यान की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

हरिवंशपुराण

यद्यपि 'हरिवंश' को महाभारत का खिल पर्व भी माना जाता रहा है किन्तु अपने पृथक् स्वरूप में यह पुराण की शैली तथा वर्ण्य विषय के कारण पुराणों की कोटि में भी गिना जाता है। इस में भी अन्य पुराणों की भाँति श्रीराम का दशरथ के पुत्र के रूप में अवतार लेने की चर्चा अनेक स्थलों पर की गई है। अध्याय ४१ श्लोक १२२ में लिखा है कि चौबीसवें त्रेतायुग में भगवान विष्णु राजा दशरथ के कमलनयन श्रीराम के रूप में प्रकट हुए और कुछ समय तक महर्षि विश्वामित्र के अनुयायी रहे। इसी पुराण में आगे लिखते हैं कि सर्वसमर्थ महाबाहु भगवान अपने को चार रूपों में प्रकट करके स्वयं श्रीराम के नाम से विख्यात हुए। पुराण के अध्याय ४ श्लोक १२३ में श्रीराम के आदर्श सखा रूप का चित्रण करते हुए कहा गया है कि श्रीराम ने अपने मित्र सुग्रीव की भलाई के लिए युद्ध में महाबली वानरराज वाली को मार डाला और सुग्रीव का राज्याभिषेक कर दिया।

श्रीमद्देवी-भागवतपुराण

इस पुराण में भी रामविषयक कथा का आंशिक उल्लेख है। तृतीय स्कन्ध के अध्याय ३० श्लोक सं. १५-१७ में लिखा है कि लंका से लौटने पर हनुमानजी ने जब श्रीराम को सीताजी की विपत्ति सुनाई, तो श्रीराम व्याकुल हो उठे। हनुमान ने श्रीराम को ढाँढ़स बँधाते हुए कहा कि हे महाबाहु! आप धैर्य धारण कीजिए। सीताजी परतन्त्र होती हुई भी सती धर्म में स्थित रहकर अहर्निश आप ही का ध्यान करती हैं। इन्द्र ने स्वयं लाकर उन्हें कामधेनु का दूध पिला दिया है जिससे उन्हें भूख-प्यास के कष्ट से मुक्ति मिल गई है।

भागवतपुराण

भागवतपुराण यद्यपि भगवान श्रीकृष्ण के चरित्र केन्द्रित पुराण है; किन्तु अप्रत्यक्ष-प्रत्यक्ष रूप में भागवत में रामकथा का भी वर्णन मिलता है। स्कन्ध २ अध्याय ७/३ में आया है- 'अवतार को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि जो सम्पूर्ण कलाओं का ईश है, उसने स्वयं ही इक्ष्वाकुवंश में अवतार लेकर गुरु-पिता-माता के निर्देश से प्रिया एवं अनुज के सहित वन में जाकर दशकन्धरवधादि लीला की। स्कन्ध ०५.१९.२००१ में श्रीरामकथा की स्पष्ट चर्चा है। इसी अध्याय के श्लोक ३

में श्रीराम को नौ विशेषयों से संबोधित किया गया है। स्कन्ध ग्यारह के अध्याय ५/३४ में इस आशय का विचार व्यक्त हुआ है कि राज्य-लक्ष्मी का त्याग कर पत्नी की प्रेरणा से मायामृग के पीछे राम का दौड़ना अपने में एक विशेष महत्त्व रखता है। कलियुग के चक्कर में दौड़ने वाले लोगों के लिए राम की शरण के अतिरिक्त कहीं ठौर ठिकाना नहीं है।

एवंविध स्पष्ट है कि उल्लिखित पुराणों में रामकथा का वर्णन पंचतंत्रीय शैली में किया गया है। इस शैली में उपादान के रूप में रामकथा का वर्णन सर्वत्र 'सर्वभूतेषुहितेरताः' को ध्यान में रखकर हुआ है।

लीलाधाम ३/३०७ न्यू पाटलिपुत्र,
कॉलोनी, पटना-१३

5 8 5

सेतु-माहात्म्य

स्कन्द पुराण के ब्राह्मखण्ड में सेतु माहात्म्य विस्तार से वर्णित है। इसके प्रथम अध्याय में नैमिषारण्यवासियों के पूछे जाने पर सूत विस्तार से सेतु दर्शन, स्नान और तीर्थयात्रा की फलश्रुति बतलाते हैं। इसी अध्याय से कुछ अंश यहाँ संकलित हैं:-

अस्ति रामेश्वरं नाम रामसेतौ पवित्रितम्।।१७।।
क्षेत्राणामपि सर्वेषां तीर्थानामपि चोत्तमम्।।
दृष्टमात्रे रामसेतौ मुक्तिः संसारसागरात्।।१८।।
हरे हरौ च भक्तिः स्यात्तथा पुण्यसमृद्धिता।।
कर्मणस्त्रिविधस्यापि सिद्धिः स्यान्नात्र संशयः।।१९।।

रामसेतु क्षेत्र में पवित्र रामेश्वर शिवलिंग है। सभी तीर्थों और पुण्य क्षेत्रों में यह रामेश्वर उत्तम है। रामसेतु के दर्शन मात्र से संसार रूपी सागर से मुक्ति मिल जाती है, भगवान् विष्णु एवं भगवान् शिव के प्रति भक्ति होती है, पुण्य वृद्धि होती है, तीनों प्रकार के कर्मों की सिद्धि होती है, इसमें सन्देह नहीं।।१७-१९।।

यो नरो जन्ममध्ये तु सेतुं भक्त्यावलोकयेत्।।
तस्य पुण्यफलं वक्ष्ये शृणुध्वं मुनिपुंगवाः।।२०।।

जो मनुष्य इस जन्म में सेतु का भक्ति-भाव से दर्शन करते हैं उनके पुण्य का मैं बखान करता हूँ। हे मुनिश्रेष्ठगण! आप लोग सुनें।।२०।।

मातृतः पितृतश्चैव द्विकोटिकुलसंयुतः।।
निर्विश्य शम्भुना कल्पं ततो मोक्षं समश्नुते।।२१।।

मातृकुल और पितृकुल के करोड़ो पूर्वजों और वंशजों के साथ भगवान् शंकर की कृपा से कल्प पर्यन्त निवास कर मोक्ष प्राप्त करते हैं।।२१।।

गण्यन्ते पांसवो भूमेर्गण्यन्ते दिवि तारकाः।।
सेतुदर्शनजं पुण्यं शेषेणापि न गण्यते।।२२।।

भले धरती की धूल के कण गिन लें, आकाश के तारे गिन लें; किन्तु सेतु के दर्शन से उत्पन्न पुण्य भगवान् शेषनाग भी नहीं गिन सकते।।२२।।

समस्तदेवतारूपः सेतुबन्धः प्रकीर्तितः।।
तद्दर्शनवतः पुंसः कः पुण्यं गणितु क्षमः।।२३।।

सेतुबन्ध सभी देवों का समन्वित रूप है इसका दर्शन करनेवाले मनुष्य का पुण्य भला कौन गिन सकता है।।२३।।

सेतुं दृष्टा नरो विप्राः सर्वयागकरः स्मृतः।।
स्नातश्च सर्वतीर्थेषु तपोऽतप्यत चाखिलम्।।२४।।

जिन्होंने सेतु का दर्शन किया मानो उन्होंने सारे यज्ञ कर लिये, सभी तीर्थों में स्नान कर लिया, सारी तपस्या उन्होंने कर ली।।२४।।

सेतुं गच्छेति यो ब्रूयाद्यं कं वापि नरं द्विजाः।।
सोऽपि तत्फलमाप्रोति किमन्यैर्बहुभाषणः।।२५।।

''आप सेतु दर्शन के लिए यात्रा करें'' यह यदि कोई किसी से कहे तो वह भी यात्रा का फल प्राप्त करता है। उसे अधिक समझाने अर्थात् माहात्म्य बतलाने वालों का तो कहना ही क्या।।२५।।

सेतुस्नानकरो मर्त्यः सप्तकोटिकुलान्वितः।।
सम्प्राप्य विष्णुभवनं तत्रैव परिमुच्यते।।२६।।

जो सेतु पर स्नान करते हैं वे मनुष्य सात करोड़ कुटुम्बों के साथ भगवान् विष्णु का परमपद प्राप्त कर वही मोक्ष पाते हैं।।।२६।।

सेतुं रामेश्वरं लिङ्गं गन्धमादनपर्वतम्।।
चिन्तयन्मनुजः सत्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते।।२७।।

सेतु, रामेश्वर शिवलिंग और गन्धमादन पर्वत इनका चिन्तन करता हुआ मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है।

राम, रामायण और राम-सेतु की पुरातनता

▶*डॉ. तपेश्वर नाथ*

पुरुषोत्तम राम इस देश के करोड़ों वासियों की हजारों वर्षों की धार्मिक, सांस्कृतिक आस्था के प्रतीक रहे हैं। इनकी अमर शौर्यगाथा हजारों वर्षों से भारतीयों के मन प्राणों में रची-बसी है। इसी शौर्यगाथा का आदि महाकाव्य 'रामायण' या 'वाल्मीकि-रामायण' है।

'रामायण' शब्द यौगिक है जिसमें दो पद हैं- राम और अयन। अयन का अर्थ है- गति, चाल या गमन-मार्ग। तो इस रामायण महाकाव्य में, नारद की प्रेरणा से, रामावतार के परवर्त्ती महर्षि वाल्मीकि ने उस युग के सर्वाधिक प्रतापी-तेजस्वी भारत-पुरुषोत्तम राम के लोकप्रशस्त चरित अयोध्या से लंका तक का यशोगान किया है। इनका चरित यात्रामय होने के कारण महर्षि आदिकवि वाल्मीकि ने अपने इस महाकाव्य का नाम रामायण रखा। इस यात्रामय चरित के कुछ प्रसिद्ध आयाम हैं- किशोर राम का विश्वामित्र मुनि द्वारा यज्ञ-रक्षणार्थ ले जाना, उनके द्वारा असुर-वध के अनन्तर मुनि द्वारा अनेक अस्त्र-शस्त्रों का वरदान, राजा जनक द्वारा आयोजित

भगवान् श्रीराम इस देश के आदर्श के पर्याय रहे हैं; 'रामो विग्रहवान् धर्म:' यानी राम धर्म के साक्षात् स्वरूप हैं तथा प्रत्येक काल एवं प्रत्येक क्षेत्र में कवियों एवं लेखकों ने उनके महान् चरित का वर्णन श्रद्धापूर्वक किया है। इस देश की भौगोलिक सीमा 'आसेतु-हिमाचल' से सर्वदा दी गयी है यानी राम-निर्मित सेतु से लेकर हिमालय तक भारतवर्ष की भौगोलिक सीमा मानी गयी है। राम नाम का उल्लेख न केवल तुलसी-जैसे सगुणवादी कवियों ने किया; बल्कि कबीर और दादू-जैसे सभी निर्गुणवादियों ने उन्हीं के नाम का स्मरण किया। महान् मुगल सम्राट् अकबर ने 'राम-सिय' सिक्के चलाकर उनके प्रति अगाध श्रद्धा प्रकट की। इकबाल ने उन्हें आदर्श पुरुष माना। इस प्रकार, राम भारतीय संस्कृति में अमित श्रद्धा के अनुपम पात्र रहे हैं।

ऐसे आदर्श महापुरुष के बारे में भारत सरकार एवं भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण की ओर से दायर हलफनामे में उनके अस्तित्व को नकारा जाना घोर आपत्तिजनक है। यदि भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण को अभी तक पुरातात्त्विक प्रमाण नहीं मिले हैं, तो यह उसकी सीमा एवं परिस्थितियों का द्योतक है, न कि इस देश में सदियों से चली आ रही लिखित परम्परा के असत्य होने का। नासा के चित्र से जो राम-सेतु या उसके सदृश जो प्राकृतिक संरचना है, उसे पर्यावरण की दृष्टि से भी तोड़ना उचित नहीं है; अत: केन्द्र सरकार कोई वैकल्पिक व्यवस्था करे। भगवान् राम के नाम से सारे देश में बहुत-सारे स्थल जुड़े हैं, जहाँ लाखों-लाख लोग प्रतिदिन जाते हैं, उन्हीं की कड़ी में रामसेतु भी है; अत: उसे अक्षुण्ण रखना सबका कर्तव्य बनता है।

सीता-स्वयंवर में जाकर शंकर-धनुष तोड़ सीता का वरण, अयोध्या में राज्याभिषेक की घोषणा तथापि उसी सुबह हठात् पिता दशरथ द्वारा उन्हें वर्षों का वनवास देना, राम का पत्नी सीता एवं अनुज लक्ष्मण के साथ अविलम्ब वन-प्रस्थान, चित्रकूट में भरतजी द्वारा उन्हें लौटाने का विफल उपक्रम और राम का पंचवटी-प्रस्थान, शूर्पणखा के नासिका-भंजनोपरान्त प्रतिशोधवश लंकापति का खर-दूषण को भेजना और राम-लक्ष्मण द्वारा उनका संहार करना, राक्षसराज रावण द्वारा सीता-हरण। मुनियों का तपोभंग, अंग-भंग करनेवाले राक्षसों के वध का प्रण, पुनः सीता-सन्धान-क्रम में किष्किन्धा-आगमन, हनुमान् की मध्यस्थता में राम-सग्रीव मैत्री, बालि-वध, हनुमान् द्वारा समुद्र-लंघन, सीता-संधान, रावण-खण्डित-जटायु द्वारा उसकी सम्पुष्टि, राम का सागर-विनय, सागर-बन्धन, शिवलिंग स्थापना-पूजन, विभीषण-मैत्री, लंका पर आक्रमण, रावण वध, सीता-उद्धार, सखा सहित अयोध्या-आगमन, राज्याभिषेक आदि।

ये सारे प्रसंग युगों से भारतीय जन-मानस के तारों से जुड़ कर झंकृत होते रहे हैं। इनके प्रेरक स्रोत उत्तर से दक्षिणी छोर- लंका तक महाकाव्य, पुराण, वास्तु कला (मन्दिर, मूर्त्ति, पुरावशेष, चित्र, संगीत, नाटक, रामलीला) आदि रूपों में फैले हैं। इनके चिह्न जन्म स्थान अयोध्या मन्दिर से लेकर प्रयाग के भारद्वाज आश्रम, चित्रकूट के शिला, कुंज एवं घाट, पंचवटी की पर्णकुटी, शबरी आश्रम, रामेश्वरम् के शिव मन्दिर तथा सेतु, सागर स्थित अवशेषादि रूपों में आस्तिक जनता की आस्था-भक्ति के केन्द्र में प्रतिष्ठित हैं। श्रद्धा से स्मारक बने और फिर भक्ति से मन्दिर।

दुर्भाग्यवश या अज्ञानवश राम, रामायण और राम-सेतु आदि के विषय में इन दिनों पूरे देश में ऐतिहासिकता, प्राचीनता को लेकर शर्मनाक वाद-विवाद छिड़ा है। इस क्रम में संचार माध्यमों से अनेक अनर्गल प्रलाप तो कुछ सार्थक संलाप सुनकर आस्तिक मन में संक्षोभ उत्पन्न होना स्वाभाविक हो गया है। चूँकि, संस्कृत एवं हिन्दी साहित्य के अध्ययन अनुशीलन-अध्यापन से गत पचास वर्षों से जुड़े रहने के कारण मेरे लिए उन्मुक्त हृदय और निष्पक्ष मनीषा से अपने समाज के बीच इसकी जानकारी को बाँटना, सम्प्रति, व्यापक हित में अनिवार्य हो गया है। विशेषतः प्राचीन धरोहर विरोधी दृष्टि एवं ध्वंसक कर्म-वचन से लगातार आहत मन को इस परिचर्चा रामार्चा से थोड़ी राहत मिलेगी- इसी विश्वास से राम-सेतु के प्रामाणिक-प्राचीन उल्लेखों की आगे छानबीन की जा रही है।

इस दृष्टि से राम-सेतु का प्राचीनतम उल्लेख हमें आदिकाव्य वाल्मीकि रामायण में मिलता है, जिसे पूर्वी और पश्चिमी विद्वानों ने 'ऐतिहासिक महाकाव्य' का नाम दिया है। पेचिंग वि० वि० के कुलपति प्रो० चि० इसका चीनी पद्यानुवाद कर चुके हैं। कम्युनिस्ट रूप में भी यह काव्य-नाटक प्रचलित हैं। रामायण के साथ इस शृंखला में महाभारत को भी ऐतिहासिक महाकाव्य ही माना गया। संस्कृत साहित्य के इतिहास के लेखकों में विशेषतः प्रो० कीथ एवं प्रो० वरदाचारी ने इन्हें "Great Historical Epice" की संज्ञा दी है। डा० कामिल बुल्के की 'रामकथा' शोध ग्रन्थ में भी वाल्मीकि रामायण आधृत राम-सेतु के ऐतिहासिक-भौगोलिक ब्यौरे उपलब्ध हैं। तो, सर्वप्रथम वाल्मीकि रामायण को देखें-

(क) कथाबीज- काण्ड-१, अध्याय-१, श्लोक-८०

'समुद्रवचनाच्चैवं नलसेतुमकारयत्'

अनुक्रमणिका- १, ३, ३४- **संगमं च समुद्रस्य नलसेतोश्च बन्धनम्'।** डॉ० कामिल बुल्के का यहाँ अनुमान (राम-कथा, पृ० ५४२) है- 'लंका के पास कोई नल सेतु (जलडमरूमध्य?) पहले से विद्यमान था, जहां राम की वानर-सेना पुल बनाकर लंका पहुँच गयी।

युद्धकाण्ड- २१वां सर्ग- राम के तीन दिनों तक प्रायोपवेश करने तथा निष्फल होने पर क्रुद्ध होकर समुद्र

को अपने ब्रह्मास्त्र से क्षुब्ध करने को उद्यत होते ही सागर (सूर्य रूप में, रा०च० मानस- विप्र रूप में) प्रकट होकर उन्हें विश्वकर्मा के पुत्र नल द्वारा सेतु-निर्माण का गुर बताता है। राम कहते हैं- 'मेरे तरकश से निकला बाण अमोघ है, अतः बताओ कि इसे किस पर छोड़ूँ?' इस पर सागर ने राम को पश्चिम में स्थित द्रुमकुल्य नामक प्रदेश के विनाश का सुझाव दिया, जहाँ आभीर आदि दस्यु बसते हैं। राम ने वैसा ही किया और द्रुमकुल्य देश मरुकान्तार बन गया। (२२/२५-४०)।

सुदूर दक्षिण में रचित मध्यकालीन रंगनाथ रामायण (६/२४) में वाल्मीकि रामायण से प्रेरित यह प्रसंग भी आया है कि सागर ने राम से कहा कि आपके पिता दशरथ ने मेरे साथ असुरों को हराया था तथा देवताओं से वर पाकर वह मुझे अयोध्या ले गये थे जहाँ कुछ काल रहकर मैं यहाँ लौटा।

भट्टिकाव्य तथा इंडोनेशिया की रामायण 'रामायण काकविन' के अनुसार राम के ब्रह्मास्त्र के कारण करोड़ों मछलियाँ मर गई और समुद्र की प्रार्थना पर राम ने उन्हें पुनरुज्जीवित कर दिया।

(ख) रामायण के बाद प्राचीनता की दृष्टि से महाभारत आता है। लोकमान्य तिलक महाभारत काल इस्वी पूर्व के दो हजार वर्ष पूर्व मानते हैं। यह द्वापर युगीन महाकाव्य है। रामायण त्रेतायुगीन महाकाव्य है। अतः उससे भी कम से कम ३ हजार वर्ष का काव्य मान्य है। महाभारत के 'रामोपाख्यान' (पर्व-३, अध्याय-२६७, श्लोक- ३२) में सागर राम को स्वप्न में दीखता है तथा उन्हें वह नल द्वारा समुद्र में फेंके गये पदार्थ न डूबने देने का आश्वासन देता है। इस तरह समुद्र में पुल बनता है।

इन दो ऐतिहासिक महाकाव्यों के अनन्तर हम पुराणों पर आते हैं। प्राचीन पुराणों में स्कन्दपुराण, भागवत पुराण आदि उल्लेख्य हैं।

स्कन्दपुराण

सेतु-माहात्म्य-अध्याय २ में उपर्युक्त महाभारत-वर्णित रामोपाख्यान के अनुसार वृत्तान्त आया है, जिसमें सागर नल द्वारा शिला-संतरण वाले करतब का राम से उल्लेख कर उससे सेतु-निर्माण की प्रेरणा देने कहता है। राम वैसा ही कर सेतु बनाते हैं।

भागवत पुराण

स्कन्ध-६, अध्याय-१०, श्लोक-१३- तीन दिनों तक उपवास सहित विनय करने पर भी बात न बनते देख राम समुद्र पर कोप करते हैं और तब सागर राम के क्रोध से भयभीत होकर प्रकट होता और नल-सहयोग से सेतु-बन्धन की मंत्रणा देता है। राम वैसा ही करते हैं। नल के हाथ से सागर पर शिला-संतरण का वृतान्त वाल्मीकि-रामायण (६/२२/४१-४७) में स्वतः वर्णित है। नल राम से कहता है कि मुझे अपने पिता विश्वकर्मा का सामर्थ्य प्राप्त है, इसलिए मैं समुद्र में सेतु बाँध सकता हूँ। विश्वकर्मा ने उसकी माँ को यह वर दिया था कि तुम्हारा पुत्र मेरे ही समान होगा।

तेलुगु 'रंगनाथ-रामायण' (६/२५) के नल ने कभी पशुकण्व मुनि की सभी पूजा मूर्त्तियों को समुद्र में फेंक दिया। इसपर मुनि ने उस शाप की जगह वरदान दिया कि यह बालक जो कुछ समुद्र में फेंकेगा, वह तैरने लगेगा।

पर, बंगला कृत्तिवास रामायण (५/४५) के अनुसार नल को ब्रह्मा से वरदान मिला कि उसके स्पर्श से पत्थर सागर पर तैरने लगेगा। आगे 'रंगनाथ रामायण' के अनुसार सेतु-निर्माण के समय (६/२७) नल एक ही हाथ से वानरों द्वारा लाये हुए पर्वतों को ग्रहण कर दूसरे हाथ से समुद्र में रख देता था। इस पर हनुमान् उसके घमण्ड को तोड़ने हेतु एक ७ योजन का पर्वत उठा लाये। तब राम ने इस द्वन्द्व को टालने हेतु नल को आदेश दिया कि वह उसे दोनों हाथों से ग्रहण करे।

तिब्बती रामायण, सारलादास कृत उड़िया महाभारत, बलराम कृत रामायण तथा बंगला कृत्तिवास रामायण (५/४३) में नल-हनुमान-द्वन्द्व का उल्लेख हुआ है।

'आनन्द रामायण' (१/१०/१६६) और मराठी एकनाथ कृत 'भावार्थ रामायण' (५/४०) के अनुसार नल के गर्व के कारण समुद्र में डाले गये पत्थर छितराने लगे। तब, राम के परामर्श से पत्थरों पर 'राम' नाम लिखने पर वे संयुक्त रहने लगे।

गिलहरी के सेतुबन्ध में सहयोग के प्राचीन वृतान्त 'रंगनाथ रामायण' (६/२८) कृत्तिवास रामायण (५/४७), आलवार विप्रनारायण (६वीं शती ई०) आदि में मिलते हैं। डॉ० कामिल बुल्के के ग्रंथ (रामकथा, पृ० ५४६) में आलवार विप्रनारायण वर्णित गिलहरी-वृतान्त एस० वैथापुरी पिल्लै के ग्रंथ 'History of Tamil Language & Literature (Madras- 1956, P. 12)' में निर्दिष्ट है। आज मनुष्य की चेतना व संवेदना इतनी जड़ हो गई है कि जल-तल पर बनी उस पत्थर की सेतु-लकीर को भी नहीं देख पाती। क्या वह गिलहरी से भी तुच्छ जीव नहीं है? राम राक्षसराज रावण को मार कर सीता-उद्धार हेतु लंका पहुँचने के लिए जो मार्ग-संघर्ष और पुरुषार्थ का युगान्तरकारी अनुष्ठान कर रहे थे, उसका विश्व में आज तक कहीं दूसरा दृष्टान्त नहीं मिल सकता। गिलहरी-प्रसंग तो तथ्य में गल्प सदृश हैं।

राम-सेतु निर्माण के पौराणिक साक्ष्य रूप में दो-तीन दृष्टान्त २री-३री सदी के सद्ग्रन्थों से प्रस्तुत हैं। पहला है भास के 'अभिषेक' नाटक का, दूसरा है कालिदास के 'रघुवंश' महाकाव्य का और तीसरा है- तमिल के आलवार सन्त कुलशेखर के प्रबन्ध गीत का। दूसरी सदी के भास के 'अभिषेक' नाटक के ७वें अंक में सागर-बन्धन की कथा है। कालिदास के महाकाव्य 'रघुवंश' के सर्ग-१० से १५ तक वाल्मीकि रामायण-आधारित वृत्तान्तों का आवर्तन हुआ है जिसमें सेतु-वर्णन है। कुलशेखर आलवार १२ आलवारों में विशेषतः प्राचीन राम-भक्त (शठकोप-३री सदी) मान्य हैं। उनके 'पेरुमोलि'- ८वें दशक की ८वीं गाथा (पृ० ११४) तथा १०वें दशक, ७वीं गाथा (पृ० १२६) में सेतु-निर्माणकर्त्ता भगवान राम की वन्दना की गई है।

पश्चात्, ५५० ई० में राजा प्रवरसेन कृत प्राकृत काव्य 'सेतुबन्ध' (रावणवहो) का १५ सर्ग वाल्मीकि के युद्धकाण्ड की कथा का अलंकृत है जिसका केन्द्र सेतुबन्ध है।

रामसेतु निर्माण के पश्चात् शिवलिंग स्थापन-पूजन भी हुआ है। आज जिसे रामेश्वरम् के शिव मन्दिर के रूप में आप-हम देख रहे हैं (देख रहे हैं कि नहीं?) उसकी आधार कथा भी इन्हीं रामायणों-पुराणों में हैं, जिसे पुरातत्त्वविदों को समझ-बूझ लेना चाहिए।

स्कन्दपुराण, ब्राह्मखण्ड, सेतु-माहात्म्य, अध्याय-७/४४-४७ तथा कृत्तिवास रामायण (५/४८ तथा ६/१२२) में सेतु-बन्ध के समय और रावण-वध के बाद- दोनों बार इसका वर्णन हुआ है। पहले सैकत लिंग और फिर हनुमान द्वारा लाये लिंग को पूर्व स्थापित रामेश्वरम् लिंग के उत्तर में स्वयं उन्हीं द्वारा स्थापित किया गया है। आनन्द रामायण (१/१०/६६) में भी यह उल्लेख है पर सेतु-स्थापन के समय ही। मराठी एकनाथ के भावार्थ रामायण (६/७४) में युद्ध के बाद यह स्थापित हुआ है। दक्षिणी रंगनाथ रामायण (६/१६०) में भी युद्धोपरान्त ब्रह्महत्या-शमनार्थ यह स्थापना हुई है। परन्तु, अध्यात्म-रामायण (६/४/१) तथा तुलसीकृत रामचरित मानस (१६वीं सदी) ६/२ में यह स्थापन के साथ ही वर्णित है।

इन समस्त प्रसंगों का सुन्दर समाहार तुलसीकृत रामचरितमानस (सुन्दर के अन्त एवं लंकाकाण्ड के आरम्भ) में हो गया है। तदनुसार, राम-सेतु समुद्र की

मन्त्रणा से नल-नील सेतु विशेषज्ञों की सहायता और वानरी सेना के सहयोग से निर्मित (शिला और वृक्ष से) सारे विश्व में प्राचीनतम तकनीकी महानिर्माण रूप में प्रख्यात हैं। इन सैकड़ों देशी-विदेशी रामायणों और पुराणों में अभियन्ता तो नल-नील हैं और निर्माण के उपकरण वृक्ष और पर्वत-खण्ड हैं।

तात्पर्य यह कि राम-सेतु कोई कवि-कल्पना या मिथक नहीं बल्कि एक ऐतिहासिक भौगोलिक सत्य एवं मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम के दिव्य पुरुषार्थ का अमिट साक्ष्य है। कुछ वर्ष पूर्व नासा के अमेरिकी अन्तरिक्ष यात्रियों ने अपने उपग्रह से जो इसका चित्र सुलभ कराया गया है उसमें भी रामेश्वरम् के दक्षिण समुद्र की छिछली चट्टानी सतह पर बने सेतु स्पष्ट दीखते हैं, जिन्हें कुछ लोग अनदेखा कर तोड़ना चाहते हैं। वस्तुतः यह करोड़ों भारतीय आस्तिक जनता की श्रद्धेय धरोहर है, जिसकी रक्षा के साथ इसका संवर्द्धन किया जाना चाहिए। बगल में 'सेतुसमुद्रम्' बने तो हमें कोई आपत्ति नहीं। पर, इस साहित्यिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक, प्राकृतिक विरासत को विकृत या ध्वस्त करना हमारी धर्म भावना पर आसुरी प्रहार के सदृश तिरस्कार्य है।

इसका 'आदम ब्रिज' नाम भी अमेरिकी दबाव का फल है। वैज्ञानिक दृष्टि से थोरियम का और नानावर्णी मछलियों का अकूत भण्डार यहाँ भरा है जो सेतु-ध्वंस से ध्वस्त हो जायेगा। सुनामी की प्रलयंकर लहरों से और जल-दस्युओं से भी दक्षिणी तट का इससे बचाव हुआ है और आगे होगा। ऐसे में, यह सर्वथा रक्षणीय है। साथ ही तुलसी के राम के इस आवश्वासन को हम याद करें-

'मम कृत सेतु जो दरसन करिही।
सो बिनु स्रम भवसागर तरिही।'

हम कितने अभागे होंगे जो इस पावन तीर्थ का दर्शन करने की बजाय इसे तोड़ देंगे? इससे, वस्तुतः हमारी राष्ट्रीय अस्मिता टूटेगी। अतः यह आसुरी प्रयास न कर अन्यत्र लाभार्थ सेतु बनायें- यही काम्य है। वेद, पुराण के आर्ष वचन झूठे, आदिकवि वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, कुलशेखर, तुलसीदास आदि के सद्वचन कल्पित हैं, तो फिर दशहरा का राष्ट्रव्यापी रावण-दहन तो नेताओं का पाखण्ड ही है।

निष्कर्षतः राम, रामायण और रामसेतु एक ही आस्था के तीन चरण नित्य प्रकाशित हैं। इन्हें गोगल्सधारी उल्लुओं या अपनी सीमित साधन में बँधे भारतीय पुरात्त्व सर्वेक्षण प्रमाणित कराने की कोई आवश्यकता नहीं है। ये जुगनूँ नहीं रहेंगे, पर वह सूरज सदा देदीप्यमान बना रहेगा। ये जीवन भर जितना झूठे बोलें, आसेतु .....? हिमाचल अन्त में राम नाम ही सत्य होगा। हिन्दू धर्मस्थलों में प्रमाण ढूँढ़ने वाले क्या ईसाई-मुसाई मिथकों (कुमारी के पुत्र या पंख वाले घोड़े आदि) के प्रमाण मांग सकेंगे?

धन्य है Zneeos जिसने इधर बड़े श्रम एवं तत्परता से रामसेतु के भी आगे लंका स्थित अशोक वाटिका, सुमेरु पर्वत, संजीवनी बूटी, राम-सीता-लक्ष्मण-हनुमान की प्राचीन (प्रायः छः हजार वर्ष पूर्व की) मूर्तियों, हनुमान-दग्ध पर्वत श्रेणियों, सीता-झरना आदि मूल्यवान रामायणी धरोहरों को पुनरालोकित पुनःप्रसारित किया। भारत के अभारतीय अनार्यों की बौद्ध लंका की इन पुरासेवी धरोहरों से द्रोह व हठत्याग कर सीख लेनी चाहिए और राम-सेतु सहित इन धरोहरों के संरक्षण हेतु राष्ट्रीय एकता हित जुट जान चाहिए।

पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
ति०मां० भागलपुर विश्वविद्यालय,
भागलपुर

मर्यादापुरुषोत्तम राम की ऐतिहासिकता

▶आचार्य किशोर कुणाल

कुछ इतिहासकारों ने जनता में यह भ्रम फैलाने की चेष्टा की है कि इस देश में भगवान् श्रीराम की कथा और पूजा रामानन्दाचार्य एवं गोस्वामी तुलसीदास के पूर्व लोकप्रिय नहीं थी। एक इतिहासकार तो अपने विद्यार्थियों एवं सहयोगियों को वर्षों से यह बताते रहे हैं कि रामगुप्त (पाँचवी शती ई.) के पूर्व इस देश में राम-नाम ही नहीं था। यह कथन सर्वथा भ्रामक है।

इसी प्रकार लक्ष्मीधर के 'कृत्यकल्पतरु' में राम-सम्बन्धी पूजा के अनुल्लेख के कारण कुछ विद्वान् यह मानते रहे हैं कि रामानन्दाचार्य के पूर्व कर्मकाण्ड की परम्परा में राम का अस्तित्व नहीं रहा है। किन्तु यह तथ्य भ्रामक है। भारत की मानसिकता उन्हें इससे बहुत पूर्व से ही मर्यादा पुरुषोत्तम रूप में ही नहीं बल्कि विष्णु के सातवें अवतार के रूप में पूजती रही है। अब हम जगद्गुरु रामानन्दाचार्य (13वीं शती) के काल से पूर्व के संस्कृत एवं हिन्दी वाङ्मय में राम के देवत्व का प्रतिपादन करेंगे।

> भारतीय संस्कृति में श्रीराम मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में तो अत्यन्त प्राचान काल से प्रतिष्ठित रहे है। बौधायन गृह्यसूत्र (ई0 पू0 8वीं शती) में जल-तर्पण के प्रसंग में ऋषि के रूप में प्रतिष्ठित वाल्मीकि 'रामायण' में श्रीराम का पावन इतिहास लौकिक संस्कृत भाषा में निवद्ध कर आदिकवि के रूप में प्रतिष्ठित हुए। उन्होंने भी वालकाण्ड के प्रारम्भ में पुत्रेष्टि यज्ञ के प्रसंग में उन्हें स्पष्टतः विष्णु का अवतार माना है। 'रामायण' का यह अंश यदि कुछ विद्वानों के अनुसार प्रक्षेप भी है तो इसकी पूर्व सीमा कालिदास से पूर्व ही होगी; क्योंकि कालिदास के 'रघुवंश' महाकाव्य के दशम सर्ग का मूलस्रोत रामायण का यहीं अंश है। कालिदास से पूर्व भास ने भी इनके देवत्व का निरूपण 'अभिषेक' नाटक में किया है। इस प्रकार भारतीय वाङ्मय श्रीराम को सहस्राब्दियों से देवता के रूप में पूजती रही है; किन्तु कुछ संशयवादी विद्वान् श्रीराम के देवत्व की पूर्वसीमा 13वीं शती मानते रहे हैं। उन विद्वानों के मत का खण्डन कर रहे हैं इतिहास और संस्कृत वाङ्मय के विद्वान् आचार्य किशोर कुणाल।

राम-नाम भारतवर्ष की नस-नस में सदियों से समाया हुआ है। संस्कृत एवं सभी भारतीय भाषाओं के सभी प्रमुख कवियों ने भगवान् श्रीराम के प्रति कुछ-न-कुछ श्रद्धा-सुमन अवश्य समर्पित किया है। रामायण के पात्रों का उल्लेख उनकी रचनाओं में किसी-न-किसी प्रकार अवश्य होता रहा है। फिर भी हमारे संशयवादी इतिहासकार लोगों के बीच कुछ-न-कुछ भ्रान्ति अवश्य फैलाने की चेष्टा करते हैं। कभी वे लिखते हैं कि पाणिनि के व्याकरण-ग्रन्थ में राम का उल्लेख न होने के कारण रामायण पाणिनि के परिवर्त्ती काल की रचना है। ये इतिहासकार इतनी बात क्यों नहीं समझते कि पाणिनि कोई धर्मकथा नहीं लिख रहे थे, बल्कि व्याकरण-ग्रन्थ लिख रहे थे, जो सूत्र-शैली में था, जिसमें कम-से-कम शब्दों में अधिक-से-अधिक बात कहनी थी। ये सूत्रकार

अर्ध-मात्रा के लाघव को (कम करने को) पुत्रोत्सव जैसा आनन्द मानते हैं। फिर भी अष्टाध्यायी के सूत्र 6.1.157 'पारस्करप्रभृतीनि च सञ्ज्ञायाम्' के गणपाठ में 'किष्किन्धा' शब्द का उल्लेख हुआ है।

पारस्करो देशः कारस्करो वृक्षः।
रथस्पा नदी किष्कुः प्रमाणम् किष्किन्धा गुहा।।

जब किष्किन्धा है, तब क्या अयोध्या नहीं रही होगी? वाह्वादिभ्यश्च 4।1।96 में 'सुमित्रा' शब्द का उल्लेख हुआ है। इस सूत्र के अनुसार वाह्वादि गण में पठित शब्दों से अपत्य (सन्तान) के अर्थ में इञ् प्रत्यय होता है। इस प्रकार 'सुमित्रा' शब्द से अपत्य अर्थ में 'सौमित्रि' शब्द की सिद्धि होती है, जो लक्ष्मण का वाचक है, क्योंकि लक्ष्मण रामकथा में सुमित्रा के पुत्र हैं। इस 'सौमित्रि' शब्द का उल्लेख पाणिनि ने 'गहादिभ्यश्च'4।2।138 सूत्र के गणपाठ में भी किया है, जिससे सौमित्रेय' शब्द की सिद्धि होती है। इसी गणपाठ में 'वाल्मीकि' शब्द भी है। इस प्रकार पाणिनि सूत्र "नखमुखात् संज्ञायाम्" से 'शूर्पणखा' में णत्व हुआ है।

ऐसे संशयग्रस्त इतिहासकारों को, जिन्हें किसी ग्रन्थ में किसी के नाम का उल्लेख नहीं मिलने पर तुरत यह निर्णय करने की आदत है कि उसका अस्तित्व ही उस समय तक नहीं था, हमारा सुझाव है कि वे एक बार बाणभट्ट को पढ़ लें। सातवीं शताब्दी में गद्यसम्राट् बाणभट्ट ने हर्षचरित के मंगलाचरण में व्यास, कालिदास, भास, प्रवरसेन आदि कवियों की स्तुति की है; किन्तु वाल्मीकि का स्मरण नहीं किया है, तो क्या वाल्मीकि बाण के पूर्ववर्त्ती नहीं थे या वाणभट्ट वाल्मीकि से अनभिज्ञ थे? बाणभट्ट ने तो अपनी दूसरी रचना 'कादम्बरी' में अगस्त्याश्रम के वर्णन में रामकथा से पूर्ण अभिज्ञता प्रदर्शित की है- **'यत्र च दशरथवचनमनुपालयन्नुत्सृष्टराज्यो दशवदन-लक्ष्मी-विभ्रमविरामो रामो.....।**

समस्त भारतीय वाङ्मय में रामकथा के प्रसंगों की भरमार है, इतनी प्राचीन, व्यापक एवं अविच्छिन्न परम्परा विश्व-इतिहास में बहुत कम कथाओं को मिली है, भारत ही क्यों, सुदूर दक्षिण पूर्वी देशों में भी राम-कथा की विकास-यात्रा सदियों पुरानी है, गोस्वामी तुलसीदासजी से एक हजार वर्ष पूर्व। उन सभी देशों में भी विविध रामायणों की रचना हुई और रामकथा के विभिन्न स्वरूपों का विकास हुआ।

महाराज पृथ्वीराज चौहान के दरबारी कवि चंदबरदायी (12 वीं शदी) का काव्य 'पृथ्वीराज रासो यद्यपि एक प्रशस्ति काव्य है साथ ही कवि को हिन्दी साहित्य की परम्परा में वीरगाथा कालीन कवियों के अन्तर्गत रखा गया है, किन्तु इस प्रशस्ति काव्य में भी प्रसंगवश अनेक भक्तिपरक कविताओं का स्फुरण हुआ है। कवि ने सरस्वती, गंगा, यमुना, गणेश, इन्द्र, हनुमान् आदि देवताओं के अतिरिक्त भगवान् विष्णु के 24 लीलावतारों तथा दशावतारों का भी वर्णन स्तुति-शैली में किया है। दशावतार-वर्णन में यहाँ भी सातवें अवतार के रूप में दशरथ के पुत्र राम का उल्लेख आया है। दूसरे समय (रासो में अध्याय या परिच्छेद के लिए व्यवहृत शब्द) के आरम्भ में "अथ दसम लिख्यते" इस वाक्य के द्वारा दशावतार का प्रसङ्ग प्रारम्भ कर सर्वप्रथम विष्णु की स्तुति करते हैं फिर दशावतारों का नाम स्मरण करते हुए कहते हैं–

मछ्छ कछ्छ वाराह प्रनम्मिय।
नारसिंघ वामन फरसम्मिय।।
सुअ दसरथ्थ हलद्धर नम्मिय।
बुद्ध कलंक नमो दह नम्मिय।।

धर्मशास्त्र की परम्परा में 'अगस्त्य-संहिता' का उल्लेख परवर्ती निबन्धकारों ने 'रामनवमी' व्रत के सन्दर्भ में किया है। हेमाद्रि (13वीं शती), माधवाचार्य (14वीं शती), कमलाकर भट्ट (16वीं शती) आदि निबन्धकारों ने श्रीराम की पूजा-आराधना विषयक ग्रन्थ अगस्त्य-संहिता

की पंक्तियों का उल्लेख किया है। रामनवमी व्रत की कथा भी 'अगस्त्य संहिता' से उद्धृत उपलब्ध होती है। इस प्रकार 13वीं शती से पूर्व श्रीराम कर्मकाण्ड की परम्परा में भी प्रतिष्ठित हो चुके हैं।

नरसिंह पुराण धर्मशास्त्र की परम्परा में प्रसिद्ध रहा है। 1260 ई० के आसपास श्रीदत्त उपाध्याय ने 'आचारादर्श' में इससे प्रमाण प्रस्तुत किया है। 14वीं शती में ज्योतिरीश्वर ने तो इसे महापुराण माना है। इसमें भी रामावतार का प्रसंग है जहाँ ब्रह्मा द्वारा श्रीराम की स्तुति उनके देवत्व का प्रतिपादक है-

नमः क्षीराब्धिवासाय नागपर्यंकशायिने।
नमः श्रीकरसंस्पृष्टदिव्यपादाय विष्णवे।।

(45।15)

अल्बेरुनी ने 1030 ई0 में न केवल **विष्णुपुराण** का उल्लेख किया है; वल्कि इसे उद्धरण भी लिया है अतः विष्णुपुराण की अन्तिम काल सीमा 10वीं शती है। इस पुराण में यद्यपि कृष्णावतार से सम्बद्ध कथाएँ अधिक हैं; किन्तु रामावतार के प्रसङ्ग में उनके देवत्व का उल्लेख किया गया है –

तस्यापि भगवानब्जनाभो जगतः स्थित्यर्थमात्मांशेन रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्नरूपेण चतुर्द्धा पुत्रत्वमायासीत्। (अंश 4 अध्याय 4) अर्थात् दशरथ के भी भगवान् विष्णु जगत् की स्थिति के लिए अपने अंशों से राम, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न इन चार रूपों में पुत्र हुए।

108 उपनिषदों में **रामतापिनीयोपनिषद्** राम-पूजन की परम्परा में प्रसिद्ध आगम शास्त्रीय ग्रन्थ है। इस उपनिषद् का उल्लेख मुक्तिकोपनिषद् में किया गया है, जहाँ इसे अथर्ववेद से सम्बद्ध उपनिषद् माना गया है।

पद्मपुराण में राम के देवत्व का पूर्ण विकास उपलब्ध होता है। इसके पाताल-खण्ड के पाँचवें अध्याय में सभी देवों द्वारा राम की स्तुति की गयी है जिसमें उन्हें अनादि आद्य, नर रूपधारी और शिव द्वारा पूजित माना गया है-

अनादिराद्यो नररूपधारी
हारी किरीटी मकरध्वजाभः
जयं करोतु प्रसभं हतारिः
स्मरारिसंसेवितपादपद्मः।।

उत्तरखण्ड के अध्याय 75 में रामोपासना की आगम-पद्धति के अनुरूप रामरक्षास्तोत्र उपलब्ध है, जिसके ऋषि विश्वामित्र हैं। इसमें विनियोग एवं ध्यान के साथ कुल 9 मन्त्र हैं। इसी खण्ड के 254वें अध्याय में नामानुकीर्त्तन की महिमा बतलाकर 'अष्टोत्तरशतनाम' का उल्लेख हुआ है जिसमें उनके अलौकिक स्वरूप का उल्लेख किया गया है-

सर्वयज्ञाधिपो यज्ञो जरामरणवर्जितः।
परमात्मा परब्रह्म सच्चिदानन्दविग्रहः।।
परं ज्योतिः परं धाम पराकाशः परात्परः।
परेशः पारगःपारः सर्वभूतात्मकः शिवः।।

महाकवि माघ कृत शिशुपालवध के प्रथम अध्याय में नारद श्रीकृष्ण को उनके देवत्व का स्मरण कराते हुए कहते हैं कि आप साक्षात् विष्णु स्वरूप हैं; आपने बार-बार अवतार लेकर पृथ्वी पर आये संकट को दूर किया है। इसी क्रम में रामावतार का वर्णन कर रावण के संहार की बात कही गयी है-

स्मरत्यदो दाशरथिर्भवन्भवा-
नमुं वनान्ताद्वनितापहारिणम्।
पयोधिमाबद्धचलज्जलाविलं
विलंघ्य लंकां निकषा हनिष्यति।।

अर्थात् क्या आप स्मरण करते हैं कि दशरथ पुत्र होते हुए आपने वन से सीता का अपहरण करनेवाले इस रावण को चचंल जल वाले एवं क्षुब्ध समुद्र को पुल द्वारा पारकर लंका के समीप मारा था।

महाकवि भवभूति ने 'महावीरचरित' के प्रणयन की प्रेरणा के सम्बन्ध में कहा है कि

आदिकवि वाल्मीकि ने रघुपति के जिस 'पावन' चरित का वर्णन किया उसका 'भक्त' होने के कारण मेरी वाणी इसमें अनुरक्त हुई-

प्राचेतसो मुनिवृषा प्रथमः कवीनां
यत्पावनं रघुपतेः प्रणिनाय वृत्तम्।
भक्तस्य तस्य समरंसत मेऽपि वाच-
स्तत्सुप्रसन्नमनसः कृतिनो भजन्ताम्।।

महाकवि कालिदास ने रघुवंश के दशम सर्ग में रामावतार की भूमिका में देवताओं के द्वारा विष्णु की स्तुति का विस्तृत वर्णन कर श्रीराम के देवत्व का समर्थन किया है।

वैखानस आगम, गुप्तकाल की मूर्तिकला का सिद्धान्त ग्रन्थ है। इन दोनों ग्रन्थों में 'राघवराम' की 120 अंगुल मूर्ति बनाने का विधान किया गया है। राम की बाहु की ऊँचाई के बराबर सीता की मूर्ति दक्षिण पार्श्व में तथा राम के कान के बराबर ऊँचाई की लक्ष्मण की मूर्ति बनाने का विधान किया गया है। राम के दक्षिण पार्श्व में कुछ हटकर हृदय, नाभि अथवा जंघा के बराबर ऊँचाई की हनुमान् की मूर्ति बनाने का उल्लेख किया गया है। यह गुप्तकाल में राम, लक्ष्मण, सीता और हनुमान् की पूजा का प्रमाण है।

प्रवरसेन ने 'सेतुबन्ध' महाकाव्य में श्रीराम को विष्णु माना है। नवम आश्वासक में राम के क्रोध से दग्ध होकर समुद्र तो उनके चरणों में आँधी में गिरे वृक्ष के समान गिर जाता है साथ ही त्रिपथगा गंगा भी जिस चरण से निकली है उसी 'हरि-चरण' पर गिर पड़ती है। मूल प्राकृत श्लोक की संस्कृत छाया इस प्रकार है-

पश्चाच्च त्रस्तहृदया यत
एव निर्गता विपर्यस्तमुखी।
हरिचरणे तत्रैव कमला-
ताम्रे त्रिपथगापि निपतिता।।

महाकवि कालिदास ने तो 'रघुवंश' महाकाव्य का सम्पूर्ण दशम सर्ग श्रीराम के देवत्व की अवधारणा पर ही उपन्यस्त किया है जहाँ उन्होंने विष्णु की स्तुति परम ब्रह्म के रूप में करके रामावतार के लिए उनसे प्रार्थना की है।

नाटककार भास ने अभिषेक नाटक के मंगलाचरण में देवता के रूप में राम की वन्दना करते हुए सभी लोगों की रक्षा करने की प्रार्थना की है।

यो गाधिपुत्रमखविघ्नकराभिहन्ता
युद्धे विराधखरदूषणवीर्यहन्ता
दर्पोद्धतोल्वणकबन्धकपीन्द्रहन्ता।
पायात् स वो निशिचरेन्द्रकुलाभिहन्ता।।

निःसन्देह 'अभिषेक' के श्रीराम केवल मर्यादापुरुषोत्तम और धीरोदात्त नायक ही नहीं हैं बल्कि अलौकिक देवस्वरूप हैं, जिनकी स्तुति मंगलाचरण में की गयी है।

इसी अभिषेक नाटक में श्रीराम के बाण से समुद्र के विक्षुब्ध होने पर स्वयं वरुणदेव उपस्थित होकर श्रीराम की स्तुति करते हैं-

मानुषं रूपमास्थाय चक्रशा गदाधरः
स्वयं कारणभूतः सन् कार्यार्थी समुपागतः।।
नमो भगवते त्रैलोक्यकारणाय नारायणाय।।

कोटिल्य ने '**अर्थशास्त्र**' में विनयाधिकारिक प्रथमाधिकरण के 'इन्द्रियजय' के अरिषड्वर्गत्याग प्रसंग में कहा है कि ''**मानाद् रावणः परदारानप्रयच्छन्**'' अर्थात् अभिमान से रावण दूसरे की पत्नी का अपहरण कर विनष्ट हुआ। अतः किसी राजा को 'परदारापहरण' अर्थात् दूसरे राजा की पत्नी का अपहरण नहीं करना चाहिए। इससे वह 'रावण' के समान विनष्ट हो जाता है। यहाँ स्पष्ट रूप से रामायण की कथा का संकेत किया गया है।

जिन इतिहासकारों ने रामकथा की प्राचीनता में इस आधार पर सन्देह व्यक्त किया है कि रामायण का पुरातत्त्वीय साक्ष्य कमजोर है, उन

इतिहासकारों की जानकारी के लिए हम विदेशों में पाये जानेवाले रामायण-विषयक पुरातत्त्वीय साक्ष्यों को प्रस्तुत कर रहे हैं।

सातवाहन राजा वसिष्ठीपुत्र पुलुमावी (131-49 ई.) के नासिक-अभिलेख में राम-केशव, अर्जुन, भीम, नहुष, जनमेजय, सगर, ययाति, राम, अम्बरीष का उल्लेख किया गया है

.....**राम।** (पंक्ति संख्या 7)

केसवाजुन-भीमसेन-तुल-परकमस छणधनुसव समाजकारकस नाभाग नहुस- जनमेजय- सकर-य (या) ति-रामावरीस-समतेजस.....। (पंक्ति संख्या 8)

वर्त्तमान वियतनाम के तृतीय शताब्दीय संस्कृत-अभिलेख को, जिसमें वाल्मीकि-रामायण की अभिव्यक्ति- **'लोकस्यास्य गतागतिम्'** (इस लोक के प्राणियों का परलोक में जाना और वहाँ से आना होता रहता है।) पायी जाती है। यह अभिलेख संस्कृत में है। जी हाँ, वियतनाम में आज से सत्रह सौ साल पहले का अभिलेख पाया गया है, जो संस्कृत-भाषा में है। संस्कृत केवल भारत देश की ही राष्ट्रीय सम्पर्क-भाषा नहीं थी, बल्कि देश के बाहर भी यह सम्पर्क-भाषा के रूप में मान्य थी। यह अभिलेख राजा श्रीमार के वंशजों ने उत्कीर्ण कराया था। यद्यपि इस लेख में कोई तिथि उल्लिखित नहीं है, तथापि पुरातत्त्ववेत्ताओं ने पुरालिपि-शास्त्र के आधार पर यह तिथि (तीसरी शताब्दी) निर्धारित की है।

किन्तु, जिन संशयग्रस्त इतिहासकारों को इतने से भी सन्तोष नहीं होगा, उनके लिए प्रस्तुत है वर्तमान वियतनाम का ही सातवीं सदी का दूसरा अभिलेख जिसमें महर्षि वाल्मीकि के नाम का उल्लेख है। यह अभिलेख वियतनाम के वत्र-क्यू (प्राचीन चम्पानगरी) स्थान पर पाया गया है, और संस्कृत-भाषा में है। यह चम्पा के राजा प्रकाशधर्म का अभिलेख है, जिसने सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में वहाँ राज्य किया था और वाल्मीकि-मन्दिर की स्थापना की थी। इस अभिलेख की कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत हैं-

यस्य शोकात् समुत्पत्रं श्लोकं ब्रह्माभिपूजति।
विष्णोः पुंसः पुराणस्य मानुषस्यात्मरूपिणः।।
.....ऋतं कृत्यं कृतं येनाभिषेचनम्।
कवेराद्यस्य महर्षेर्वाल्मीकेश्श्रु..... रिह।।

इस लेख में वाल्मीकि को महर्षि, आदिकवि और पुराणपुरुष विष्णु को मनुष्यरूप धारी बताया गया है तथा क्रौंच के वध से उत्पन्न शोक के कारण श्लोक के प्रस्फुटन का उल्लेख है। यह घटना वाल्मीकिरामायण के बालकाण्ड के द्वितीय सर्ग में विशद रूप से वर्णित है।

प्राचीन चम्पा के इतिहास से ज्ञात होता है कि वर्त्तमान वियतनाम में रामकथा प्राचीन काल में लोकप्रिय थी। वियतनामी भाषा में दशरथ और दशानन काफी प्रचलित शब्द रहे हैं।

कम्बोडिया (प्राचीन कम्बुज) में रामायण का उल्लेख छठी शती के शिलालेख में मिलता है। यह शिलालेख भी संस्कृत में है। यह शिलालेख एक ब्राह्मण सोमशर्मा द्वारा सन् 598 ई. में उत्कीर्ण कराया गया था तथा 'वल कन्तेल' स्थान से प्राप्त हुआ है। यह सोमशर्मा सामवेद का मूर्द्धन्य विद्वान् था तथा राजकुमार वीरवर्मा की पुत्री का पति था। इस अभिलेख के अनुसार सोमशर्मा ने प्रतिदिन त्रिभुवनेश्वर-मन्दिर में रामायण, पुराण एवं महाभारत के अनवरत पाठ के लिए अतिशय (अतिपुष्कल) दक्षिणा की व्यवस्था की। इससे पता चलता है कि छठी-सातवीं शती में कम्बोडिया जैसे सुदूर देश में रामायण, महाभारत एवं पुराण का धार्मिक पारायण प्रतिदिन होता था।

अतिष्ठपान् महापूजाम् अतिपुष्कलदक्षिणाम्।
रामायणपुराणाभ्याम् अशेषं भारतं ददत्।।

(Val Kantal K 359)

ग्यारहवीं सदी के दूसरे अभिलेख 'प्रासात् संखः' से भी ज्ञात होता कि रामायण, महाभारत एवं पुराण के नियमित पारायण की परम्परा कम्बोडिया में थी। फिर भी रोमिला थापर कहती हैं कि रामायण कभी धर्मग्रन्थ के रूप में प्रचलित ही नहीं थी। क्यों उन्होंने इन शिलालेखों को नहीं पढ़ा है? काश, उन्होंने एक बार भी वाल्मीकि-रामायण का ही पारायण किया होता, तो ऐसी भ्रान्ति न उन्हें होती और न वह इसे दूसरों के बीच फैलातीं।

दसवीं शती के एक और अभिलेख से रामकथा पर प्रकाश पड़ता है। अंकोर-क्षेत्र में (Pre Rup. K 8060) राजेन्द्रवर्मन् ने एक लम्बा अभिलेख उत्कीर्ण करवाया, जिसमें अथर्ववेद, महाभारत, पाणिनि, रघुवंश और रामायण की घटनाओं का उल्लेख है। राजेन्द्रवर्मन् 944 ई. में गद्दी पर बैठा था। अतः यह अभिलेख दसवीं शती का निर्विवाद है। अभिलेख में रामायण-कथा का उल्लेख इस प्रकार है-

मारीच इव रामस्य नामाद्येकाक्षरश्रवात्।
यस्यारिराजो वीरोऽपि जगामानन्यजां भियम्।।

(जैसा मारीच राम के नाम का आदि अक्षर 'र' सुनकर डरता था, वैसे ही राजेन्द्रवर्मन् के नाम के प्रथम अक्षर को सुनकर शत्रु राजा, वीर होने पर भी बिना किसी अन्य कारण के, भयभीत हो जाते थे)।

सन् 1006 ई. का एक और अभिलेख मिलता है 'प्रासात् त्रपान् रन के 598', जिसमें भी रामायण का उल्लेख है-

शब्दार्थागमशास्त्राणि काव्यं भारतविस्तरम्।
रामायणान् च योऽधीत्य शिष्यान् अप्यध्यजीगपत्।।

(जिसने शब्दार्थ, आगम, शास्त्र, काव्य विस्तृत महाभारत एवं रामायण का अध्ययन दिया था, उसने शिष्यों को पढ़ाया)।

इसका प्रणेता वासुदेव का उपासक सात्वत था और 995 ई. में उसने विष्णु भगवान् की मूर्त्ति प्रतिष्ठित की थी।

कम्बोडिया से दो और अभिलेख मिलते हैं, जिनमें रामायण का उल्लेख है।

सन् 1078 ई. में 'प्रासात् वर्मेई', 'के 744' अभिलेख में यह लिखा हुआ

रामायणभारतादिकथाविवक्षा ..... यानी रामायण महाभारत आदि कथाओं की व्याख्या की.....।

दूसरा अभिलेख ग्यारहवीं शती के अन्त का है, जिसमें राजा जयवर्मन् षष्ठ (1080-1106 ई.) के होता योगीश्वर पण्डित ने अपने अभिलेख में रामायण का उल्लेख किया है।

कम्बोडिया से एक और अभिलेख मिला है, जो राम, लक्ष्मण और सीता को समर्पित है। यह अभिलेख तेरहवीं शती के प्रारम्भ का है तथा अंगकोरवाट के 'प्रह-खो' (Prah-Khan) स्थान से प्राप्त हुआ है। बौद्ध राजा जनवर्मन् सप्तम ने अनेक अभिलेख विविध देवों को समर्पित किये, जिनमें से एक अभिलेख राम, लक्ष्मण और सीता को समर्पित है।

कम्बोडिया से ही एक और अभिलेख प्राप्त हुआ है, जो गौड़ी शैली में उत्कीर्ण है और यह वहाँ के राजा यशोवर्मन् (889-900 ई.) के समय का है। इस अभिलेख में कवि प्रवरसेन के राम-विषयक काव्य 'सेतुबन्ध' या 'रावणवध' का उल्लेख है।

कम्बोडिया के बाद हम जावा की ओर चलते हैं। जावा (वर्त्तमान इण्डोनेशिया, जो अब मुस्लिम देश है) में भी रामायण के पारायण का उल्लेख है। सन् 908 ई. के दो ताम्रपत्र, जो 'संगसंग' (Sangsang) ताम्रपत्र के नाम से जाने जाते हैं, अभी ऐमस्टरडम में सुरक्षित हैं। उनमें एक ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि शिलान्यास-समारोह

में रामायण का पारायण होता था। 'बुकजन' स्थान पर शिलान्यास समारोह का उल्लेख करते हुए ताम्रपत्र में लिखा हुआ है कि 'सी जलुक' ने रामायण का पारायण किया तथा वंशीवादन एवं हास-परिहास भी।

जावा के बहुत-से अभिलेखों में रामकथा के पात्रों का उल्लेख है। सन् 732 ई. के एक संस्कृत-अभिलेख में 'राघव' का उल्लेख है, 824 ई. के एक अभिलेख में रावण का, 862 ई. के एक अभिलेख में लंका का, 871 ई. के एक अभिलेख में अयुद्ध (नामक व्यक्ति का) 879 ई. के ही अभिलेख में भरत का, 880 ई. के एक अभिलेख में राम का, 907 ई. के एक अभिलेख में राघव (लाघव) का, 907 ई. के एक अभिलेख में रामायण का, 910 ई. के एक अभिलेख में सीता का, 928 ई. के एक अभिलेख में बाली का, 924 ई. के एक अभिलेख लक्ष्मण का उल्लेख है। ऐसा प्रतीत होता कि जावा में रामकथा बहुत पहले से प्रचलित थी और बहुत दिनों तक वह वहाँ की संस्कृति की आधार शिला रही। सन् 1486 ई. में राजा गिरीन्द्रवर्द्धन ने तो द्वादशवर्षीय श्राद्ध के अवसर पर भगवान् श्रीराम एवं भरद्वाज की मूर्तियाँ मन्दिरों में स्थापित कीं।

अभिलेखों के अनन्तर हम मूर्त्तियों एवं भित्ति-चित्रों को प्रस्तुत करते हैं। कम्बोडिया में सातवीं शती के पूर्व की तीन वैष्णव मूर्त्तियाँ नोम दा, (Phnom da) से मिली हैं। इनमें एक मूर्त्ति 'धनुर्धर' की है, जो निस्सन्देह भगवान् राम की मूर्त्ति है। इस प्रकार, सातवीं शती के पूर्व ही धनुर्धर राम की पूजा कम्बोडिया तक पहुँच गयी थी।

कम्बोडिया में भगवान् श्रीराम की बहुत-सी मूर्त्तियाँ मिली हैं, किन्तु उनका काल-निर्धारण निश्चयपूर्वक नहीं किया जा सकता।

दक्षिण पूर्व एशिया के देशों में रामकथा के भित्तिचित्रों की भरमार है। प्राचीन चम्पा (वर्त्तमान वियतनाम) के एक भित्तिचित्र में एक विशाल बन्दर दो धनुर्धरों के बीच खड़ा है। एक भित्तिचित्र में एक बन्दर एक व्यक्ति को पकड़कर फेंकने के लिए तत्पर है। तीसरे भित्तिचित्र में एक महिला पत्थर पर बैठी हुई है और उनका एक पाँव बँधा हुआ है। इन भित्तिचित्रों में राम, लक्ष्मण, सीता एवं हनुमान् के चरित्रों को आसानी से पहचाना जा सकता है।

कम्बोडिया (प्राचीन कम्बुजदेश) में तो रामकथा भित्तिचित्रों की संख्या अत्यधिक है। इनमें महाभारत एवं पुराणों की कथाओं का भी उल्लेख है। कुछ कथाएँ तो इन सभी ग्रन्थों में हैं, जैसे समुद्र-मन्थन, गंगा-अवतरण। इनके भित्तिचित्र अनेक हैं। इनके स्रोत ये तीनों ग्रन्थ रहे होंगे, इसमें सन्देह नहीं।

दसवीं शती के 'बन्तेई श्राई' (Bantai Srei) मन्दिर के भित्तिचित्र में सुग्रीव से युद्धरत बाली पर राम को प्रहार करते हुए दिखाया गया है। एक चित्र में विराध द्वारा सीता को पकड़ लेने का अंकन है। अन्यत्र एक चित्र में बाली एवं सुग्रीव का युद्ध दरसाया गया है। वत एक नोम (Vat ek Phnom) के एक चित्र में सीता को अशोक-वाटिका में दिखाया गया है, बगल में दो राक्षसियाँ हैं और पीछे हनुमान् भगवान् श्रीराम की मुद्रिका लेकर खड़े हैं। यह भित्तिचित्र ग्यारहवीं शती का है।

ग्यारहवीं शती के ही दूसरे भित्तिचित्र (Baphuon c. 1060 A.D.) में राम सुग्रीव को ढाढ़स बँधाते हुए दिखाई पड़ते हैं। सन् 1085 ई. के आसपास पिमय (विभाग) के मन्दिर की एक सुहावटी (Lintel) में राम और लक्ष्मण को नागपाश में आबद्ध दिखाया गया है।

बारहवीं शती के अंकोरवाट (कम्बोडिया) मन्दिर में तो आकर्षक भित्तिचित्रों की बहुतायत को देखकर आँखें नहीं अघातीं। ढेर सारे भित्तिचित्रों में रामायण के सम्बद्ध चित्रों में समुद्र-मन्थन, वालि-वध, हनुमान् द्वारा लंका में सीता का दर्शन,

लंका-युद्ध, सीता की अग्नि-परीक्षा, पुष्पक-विमान में राम की वापसी आदि प्रमुख हैं।

बारहवीं शती के ही अनेक भित्तिचित्र थोमनान (Thommanon) और बनताए समरे (Bantay Samare) से मिले हैं।

जावा की प्रंबनन (Prambanan) घाटी के लोरा जोनरंग (Lara Jonggarang) मन्दिर में भी रामायण के भित्तिचित्रों की भरमार है। इन चित्रों में बालकाण्ड से लेकर लंका में वानरों के प्रवेश तक की घटनाओं के अनेक चित्र अंकित किये गये हैं। मुख्य मन्दिर से ब्रह्मा-मन्दिर तक इन चित्रों की शृंखला फैली हुई है।

बगल के देश वर्मा में भी पगान के मन्दिरों में राम एवं परशुराम की मूर्त्तियाँ पायी गयी हैं। ये मूर्त्तियाँ ग्यारहवीं शती की है।

थाईलैण्ड में तो रामकथा का इतना अधिक प्रभाव था कि वहाँ की राजधानी का नाम ही अयोध्या रख दिया गया और राजा अपने नाम रामायण के ही नायकों पर रखने लगे। थाईलैण्ड के इतिहास में यह काल (सन् 1409-1767 ई.) तक अयोध्याकाल था, जब थाईलैण्ड का कण कण अयोध्या और राममय हो गया था, किन्तु हमारे इतिहासकार हमें यह समझाने का प्रयत्न कर रहे हैं कि सन् 1528 ई. में अयोध्या में कोई राम-मन्दिर ही नहीं था।

इस लेख का उद्देश्य इतना ही है कि रामकथा के सम्बंध में जो भ्रान्ति फैलायी जा रही है, उसे ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर दूर किया जा सके।

5 8 5

समुद्रकृत श्रीरामस्तुति

(स्कन्दपुराण : ब्राह्मखण्ड : सेतुमाहात्म्य : अध्याय 2। श्लोक 75-88)

नमामि ते राघव पादपङ्कजं सीतापते सौख्यद पादसेवनात्।
नमामि ते गौतमदारमोक्षजं श्रीपादरेणुं सुरवृन्द सेव्यम्।।
सुन्दप्रियादेहविदारणे नमो नमोऽस्तु ते कौशिकयागरक्षणे।
नमो महादेवशरासभेदिने नमो नमो राक्षससंघनाशिने।।

राम राम नमस्यामि भक्तानामिष्टदायिनम्। अवतीर्णो रघुकुले देवकार्यचिकीर्षया।।
नारायणमनाद्यन्तं मोक्षदं शिवमच्युतम्। राम राम महाबाहो रक्ष मां शरणागतम्।।
कोपं संहर राजेन्द्र क्षमस्व वरुणालय। भूमिर्वातो वियच्चापो ज्योतींषि च रघूद्वह।।
यत्स्वभावानि सृष्टानि ब्रह्मणा परमेष्ठिना। वर्तन्ते तत्स्वभावानि स्वभावो मे ह्यगाधता।।
विकारस्तु भवेद्गाधएतत् सत्यं वदाम्यहम्। लोभात्कामाद्भयाद्वापि रागाद्वापि रघूद्वह।।
न वंशजं गुणं हातुमुत्सहेयं कथञ्चन। तत्करिष्ये च साहाय्यं सेनायास्तरणे तव।।
इत्युक्तवन्तं जलधिं रामोऽवादीन्नदीपतिं। ससैन्योऽहं गमिष्यामि लङ्कां रावणपालिताम्।।
तच्छोषमुपयाहि त्वं तरणार्थं ममाधुना। इत्युक्तस्तं पुनः प्राह राघवं वरुणालयः।।
शृणुष्वावहितो राम श्रुत्वा कर्तव्यमाचर। यद्याज्ञया ते शुष्यामि ससैन्यस्य यियासतः।।
अन्येष्याज्ञापयिष्यन्ति मामेवे धनुषो बलात्। उपायमन्यं वक्ष्यामि तरणार्थं बलस्य ते।।
अस्ति ह्यत्र नलो नाम वानरः शिल्पिसंमतः। त्वष्टुः काकुत्स्थ तनयो बलवान् विश्वकर्मणः।।
स यत्काष्ठं तृणं वापि शिलां वा क्षेप्स्यते मयि। सर्वं तद्धारयिष्यामि स ते सेतुर्भविष्यति।।

भजन और श्रीमद्भागवत-महापुराण

डॉ. सीताराम झा 'श्याम'

मानव-जीवन प्राप्त होता है भजन करने के लिए। भागवत का मूल अभिप्राय है भगवान् का अनन्य भक्त हो जाना अर्थात् श्रीराधाकृष्ण की दिव्य लीलाओं के गान को जीवन का परम लक्ष्य निर्धारित करना- उनके चरणकमलों में अपने को समर्पित कर देना। समर्पण का अर्थ संसार से सर्वथा असम्पृक्त हो कर अकर्मण्य और आलसी बन जाना नहीं, अपितु स्फूर्तिशीलता के साथ दायित्व-चेतना से- भगवत्सेवा समझकर निष्ठापूर्वक सत्कर्मों का कुशल संचालन करते रहना है। आचरण-शुचिता पर ध्यान रखाते हुए भगवन्नाम-स्मरण, सद्ग्रन्थों का अध्यन-मनन, विलक्षण भगवच्चरित का चिन्तन ही उद्दिष्ट है। इसीमें भजन का चरमोत्कर्ष परिलक्षित होता है।

नवधा भक्ति का स्वरूप प्रतिपादिक करते हुए जगद्गुरु रामानन्दाचार्य ने कहा है– उदारकीर्तेः श्रवणं च कीर्तनं हरेर्मुदा संस्मरणं पदश्रितिः। समर्चनं वन्दनदाससख्यकान्यात्मार्पणं सा नवधेति गीयते अर्थात् प्रसिद्ध कीर्तिवाले भगवान् की कथा का प्रसन्नतापूर्वक श्रवण, कीर्तन, स्मरण, चरणों में आश्रित होना, अर्चना, वन्दना, दासभाव, सख्यभाव एवं स्वयं को समर्पित करना इन नौ भेदों से युक्त भक्ति नवधा कही जाती है। मिथिला के प्रसिद्ध वैष्णव कवि गोविन्ददास ने भी यही बात कही है– श्रवण कीर्तन स्मरण वंदन पादसेवन दास। पूजन ध्यान आत्मनिवेदन गोविन्ददास अभिलाष।। श्रीमद्भागवत में इन नवो प्रकार की भक्तियों का वर्णन विस्तार से किया गया है अतः यह महापुराण भक्ति के सन्दर्भ में उपजीव्य पुराण के रूप में हजारो वर्षों से पूज्य रहा है। इस पुराण में भक्ति के माहात्म्य विषय पर विश्व-हिन्दू-मंदिर, इंग्लैंड में नवम्बर, १९८७ में **डॉ. सीताराम झा 'श्याम'** द्वारा दिए गए भागवत-प्रवचन यहाँ प्रस्तुत है।

परमात्मा की जब असीम कृपा होती है, तभी हृदय से भगवन्नाम निस्सृत होता है और 'भागवत' के पठन-श्रवण का पावन अवसर मिल पाता है। वैदिक दृष्टि कोण की उदारता--'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' (ऋग्वेद,९.६३.५) की सार्थकता निश्चित रूप से समस्त पृथ्वीवासियों को सुसंस्कृत -आचारवान् और भगवद्भक्त बनाने में निहित है। संसार में आकर विशेषकर भगवद्भूमि भारतवर्ष में जन्म ग्रहण कर जो भागवत कथा सुनने से वंचित रह जाता है, भगवन्नाम -संकीर्तन नहीं करता, उसका जीवन सफल नहीं माना जाता। यह घोषणा देवताओं की महासभा में विचक्षण विद्वानों ने की थीः

'अस्मिन् वै भारते वर्षे सूरिभिर्देवसंसदि।
अकथाश्राविणां पुंसां निष्फलं जन्म कीर्तितम्।।'

-पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, ५.५६

भजन करने की सच्ची भावना के उदय हो जाने से व्यक्ति सही आश्रय की ओर आकृष्ट होता है- उस विश्वसनीय आश्रय की ओर, जो नित्य है, सत्य

सनातन है, अविनाशी है; आदि और अन्त रहित है। सभी भौतिक पदार्थ अनित्य हैं, इसलिए वे विवेकवान् के आश्रय नहीं हो सकते। जो धन नष्ट होनेवाला है, वह अमृत्व का प्रदाता हो भी कैसे सकता है? इस वाक्य को सदा स्मरण रखना है :

'अमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तज्ञेनेति।'

-बृहदारण्यकोपनिषद्,२.४.२

जिसके हृदय में भगवत्प्रकाश है- जो सही अर्थ में भजन करता है, वह किसी भी बुराई को अपने निकट नहीं आने देता। इसी से सच्चा भक्त सदा-सर्वदा निर्भय रहा करता है :

'ज्योतिर्वृणीत तमसो विजानन्नारेस्याम दुरितादभीके।'

-ऋग्वेद, ३.३९.७

ध्यातव्य है कि मनुष्य-जन्म कठिनतम साधना का सुपरिणाम हुआ करता है। भागवत का यह उद्घोष सतर्क तथा सावधान करनेवाला है: **'दुर्लभो मानुषो देहो।'**

-श्रीमद्भागवत, ११.२.२९

महाकवि तुलसीदासजी जन-जन को सचेष्ट करने के उद्देश्य से इस सत्य को लोकभाषा में व्यंजित करते हैं :

'दुरलभ देह पाइ हरिपद भजु, करम बचन अरु हीते।'

-विनयपत्रिका, १९८.१

परन्तु, भजन नहीं करनेवाले लोग, भागवत-कथा नहीं सुननेवाले मनुष्य सर्वोत्कृष्ट प्राणी नहीं रह जाते। वे केवल मरने के लिए जन्म लेते हैं। उनका तुच्छ जीवन बुलबुले और मच्छरों की भाति नष्ट हो जाता है:

'बुद्बुदा इव तोयेषु मशका इव जन्तुषु।
जायन्ते मरणायैव कथाश्रवणवर्जिताः।।'

- पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, ५.६३

अतएव, भजन को जीवन का सर्वोत्कृष्ट साधन मानना चाहिए, भागवत अवश्य सुनना चाहिए। साधारण लोगों के लिए भी भागवत का एकाध श्लोक स्मरण रखना कठिन नहीं होता। भगवान् श्रीकृष्ण इतने दयालु हैं कि भागवत श्लोक सुनते ही- भजन का स्वर श्रवण करते ही भक्तों के साथ प्रकट हो जाते हैं :

श्रीमद्भागवतं यत्र श्लोकं श्लोकार्द्धमेव च।
तत्रापि भगवान् कृष्णो बल्लवीभिर्विराजते।।'

- स्कन्दपुराण, द्वितीय वैष्णवखण्ड, ३.१३

भागवत-मुख शुकदेवजी का स्वर सुनकर भगवान् विष्णु, भक्तराज प्रह्लाद, ब्रह्मज्ञानी उद्धव, महामुनि नारद, तत्त्वद्रष्टा सनकादि, संगीत-निष्णात अर्जुन, ताल-विशेषज्ञ इन्द्र आदि के साथ संकीर्तन में उपस्थित हो गए थे। भगवन्नाम-संकीर्तन का महत्त्व-प्रतिपादन भगवान् ने स्वयं बड़ी स्पष्टता से किया है :

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।।'

-आदिपुराण; पद्मपुराण, ९४.२१

निस्सन्देह, वह व्यक्ति आत्महत्या से भी बड़ा पाप करता है, जो भजन में मन नहीं लगाता- 'भागवत' नहीं सुनता : **'भारते मानवं जन्म प्राप्य भागवतं न यैः। श्रुतं पापपराधीनैरात्मघातस्तु तैः कृतः।।'** और, जो तल्लीन होकर भजन करता है- श्रद्धापूर्वक भागवत सुनता है, वह पिता, माता और पत्नी के कुलों की सात पीढ़ियों को तार देने का पुण्य प्राप्त करता है:

'श्रीमद्भागवतं शास्त्रं नित्यं यैः परिसेवितम्।
पितुर्मातुश्च भार्यायाः कुलपंक्तिः सुतारिता।।'

- स्कन्दपुराण, ३.१४-१५

तत्त्वतः, जीवन में सर्वाधिक महत्त्व है श्रद्धा से शास्त्र-पुराण सुनने का, निष्ठापूर्वक परमात्मा की दिव्य लीलाओं का गान करने का कारण यह कि उससे कुमति दूर रहती है तथा ज्ञान, धर्म और मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है:

'श्रुत्वा धर्मं विजानाति श्रुत्वा त्यजति दुर्मतिम्।
श्रुत्वा ज्ञानमवाप्नोति श्रुत्वा मोक्षमवाप्नुयात्।।'

- चाणक्यनीति

परन्तु, जो पूर्ण भक्त है, ईश्वर-समर्पित व्यक्ति है, वह परमात्मा को छोड़कर न तो ब्रह्मा का पद चाहता है, न देवराज इन्द्र का, वह न तो सम्पूर्ण पृथ्वी का सम्राट् बनना चाहता है, न बड़ी सिद्धि चाहता है और न ही मोक्ष की कामना करता है- भक्त को तो केवल भगवान् चाहिए:-

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धिरपुनर्भवं वा
मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत्।।'

- श्रीमद्भागवत-महापुराण, ११.१४.१४

सचमुच, इस बात का विशेष ध्यान रखना अत्यावश्यक है कि जहाँ भागवत-कथा न होती हो, भगवन्नाम का उच्चार नहीं होता हो, जहाँ संकीर्तन नहीं होता हो, प्रशस्ततम कर्म- यज्ञ नहीं होता हो, देवी-देवताओं की पूजा-अर्चा नहीं होती हो, श्रद्धा-निष्ठापूर्वक ईश्वरोत्सव नहीं मनाया जाता हो, वहाँ इन्द्रलोक के समान सुखोपभोग की समस्त सुविधाएँ रहने पर भी निवास नहीं करना चाहिए:-

न यत्र वैकुण्ठकथा सुधापगा
न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः।
न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः
सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम्।।'

- श्रीमद्भागवत-महापुराण, ५.१९.२४

युग कोई भी हो, मनुष्य शान्ति का आग्रही होता है, क्योंकि उसी में निहित है जीवन की सार्थकता। वर्तमान समय में भी विज्ञान ने आविष्कार बहुत किए हैं। साथ ही, औद्योगिक विकास की चर्चा भी कुछ कम नहीं होती। पर, संसार के सभी देशों के लोग अधिकाधिक तनाव-ग्रस्त होते जा रहे हैं। भयाकुल भी कुछ कम नहीं दीख पड़ते। जीवन से शान्ति निर्वासित हो गई है। उनके अपने ही आविष्कार और उद्योग ने सम्पूर्ण वातावरण को अशान्त बना दिया है। अतएव, उस अभाव का अनुसंधान अत्यावश्यक है, जिसके बिना जीवन में सारस्वत आनन्द नहीं प्राप्त होता, शाश्वत शान्ति नहीं मिल पाती। यह स्थिति न केवल वैज्ञानिक एवं औद्योगिक क्षेत्रों में उत्पन्न होती है, अपितु लेखन-क्षेत्रों में भी उसका प्रबल प्रभाव पड़ता है। बहुशास्त्रज्ञ एवं विश्व-विश्रुत ग्रन्थकार वेदव्यासजी का जीवन इसका ज्वलन्त दृष्टान्त रहा है। उन्होंने अन्य महान् ग्रन्थों के साथ-साथ महाभारत-जैसे विशालकाय ग्रन्थ का भी निर्माण किया। फिर भी, उन्हें शान्ति नहीं मिली। ज्ञातव्य है कि 'महाभारत' में अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष आदि से सम्बद्ध सभी विषयों का सविस्तर वर्णन किया गया है। इसकी व्यापकता के सम्बन्ध में यहाँ तक कहा जाता है कि जिन विषयों का प्रतिपादन अन्य शास्त्रों में है, उन सबका सन्निवेश इसमें है, पर जो विषय इसमें नहीं है, वह किसी अन्य ग्रन्थ में भी नहीं है :

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न कुत्रचित्।।

ऐसा रहने पर भी महर्षि वेदव्यास के जीवन में खिन्नता का सन्दर्भ जुड़ गया और तब उसका निवारण भी करना ही था। देवर्षि नारदजी ने, अपने निकट खिन्न होकर बैठे, महर्षि व्यासजी से कहा:- ''आपने भगवान् के निर्मल यश का गान भक्तिपूर्वक नहीं किया, ऐसा मुझे प्रतीत होता है।''

अरे, जिससे भगवान् ही सन्तुष्ट नहीं हों, वह ज्ञान, वह विज्ञान, वह शास्त्र- यहाँ तक कि वह वैज्ञानिक अनुसन्धान, वह औद्योगिक प्रतिष्ठान, अधूरा नहीं, तो और क्या है!'

फिर, बड़ी स्पष्टता से नारदजी ने कहा:- ''व्यासजी ! आपने धर्मादि पुरुषार्थों का वर्णन तो विस्तारपूर्वक किया, पर परिपूर्णावतार भगवान् श्रीकृष्ण की महिमा का न तो वैसा निरूपण किया और न ही भक्तिपूर्वक गान ही:-

'भवतानुदितप्रायं यशो भगवतोऽमलम्।
येनैवासौ न तुष्येत मन्ये तद्दर्शनं खिलम्।।
यथा धर्मादयश्चार्था मुनिवर्यानुकीर्तिताः।
न तथा वासुदेवस्य महिमा ह्यनुवर्णितः।।'

- श्रीमद्भागवत-महापुराण,१.५.८-९

तब महर्षि व्यास ने श्रीमद्भागवत-महापुराण की रचना कर भक्ति-महिमा का गान किया, जो अपूर्व और अप्रतिम है। श्रीराधाकृष्ण की महिमा का वर्णन करने से उन्हें परम शान्ति की प्राप्ति हुई, असीम अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव हुआ। उन्होंने डिण्डिम नाद के साथ उद्घोष किया : वाणी चाहे पूर्ण अलंकृत ही क्यों न हो, यदि उससे भगवद्भजन न हो, तो व्यर्थ है वह। भगवद्भक्त उसे कभी नहीं अपना सकतेः-

न यद् वचश्चित्रपदं हरेर्यशो
जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित्।
तद् वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा
न यत्र हंसा निरमन्त्यु शिक्षयाः।।

-श्रीमद्भागवत-महापुराण, १.५.१०

सतर्कता बरतने की आवश्यकता है कि केवल शास्त्र पढ़ लेने से जीवन सफल नहीं हो जाता, जीवन सफल होता है भागवत हो जाने से अर्थात् हृदय से भगवान् का ध्यान-स्मरण करते रहने से- तल्लीनता से भजन गाने से। भक्ति के अभाव में शास्त्र जानने से भी धर्म में रुचि नहीं होती और अधर्म से बचने का प्रयास भी नहीं हो पाता--दुर्योधन की तरह ही जीवन की महादुर्दशा हो जाती है **'जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः। जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।।'**

-पाण्डवगीता

निस्सन्देह, भक्ति से ही भगवान् की असीम कृपा प्राप्त होती है। जो फल तप, योग, साधना आदि से नहीं मिलता, वह कलियुग में भगवान् का भजन करने से श्री राधाकृष्ण का नाम-संकीर्तन करने से प्राप्त हो जाता है:

यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना।
तत्फलं लभते सम्यक् कलौ केशवकीर्तनात्।।

-पद्मपुराण,१.६८

यह भी ध्रुव सत्य है कि भगवान् अपने भक्त की रक्षा हर परिस्थिति में करते ही हैं। अश्वत्थामा ने अर्जुन की ओर ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया था, पर प्रार्थना सुनकर भगवान् कृष्ण ने तत्क्षण अर्जुन की रक्षा कीः-

कृष्ण कृष्ण महाबाहो भक्तानामभयंकर।
त्वमेको दह्यमानानामपवर्गोऽसि संसृतेः।।'

-श्रीमद्भागवत-महापुराण,१.७.२२

इसी प्रकार, उत्तरा के गर्भ की रक्षा भी भगवान् श्रीकृष्ण ने ही की थी, जिससे धर्मात्मा राजा परीक्षित का जन्म हो सका। कृष्ण-कृपा के लिए कुन्ती ने स्तुति कीः

कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च।
नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः।।'

-श्रीमद्भागवत-महापुराण,१.८.२१

हृदय की पुकार है यह। भजन का अन्यतम निदर्शन है यह। मानवता को महर्षि वेदव्यास का अनुपम अवदान है यह।

सचमुच,श्रीमद्भागवत-महापुराण वेद-अभिसिञ्चित कल्पवृक्ष का वह अति दिव्य फल है, जो परिशुद्ध रूप में परिपक्व है और इसका अन्यतम वैशिष्ट्य यह है कि इसमें न तो छिलका है और न ही गुठली। परम निर्मल हृदय शुकदेवजी ने परा-पश्यन्ती-मध्यमा-वाणी द्वारा इसे सुधामय बना दिया है। अतएव, सहज सुलभ इस मूर्तिमान् भगवद्रस को 'आलयम्'-लय होने तक आबालवृद्धा निरन्तर और बारम्बार पीते रहें। पृथ्वीवासियों का यह अहोभाग्य है कि देव-दुर्लभ यह अत्यन्त दिव्य एवं अप्रतिम भगवद्रस उन्हें उपलब्ध है; अन्य लोकों में इसे नहीं प्राप्त किया जा सकताः-

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं
शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्।
पिबत भागवतं रसमालयं
मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः।।'

-श्रीमद्भागवत-महापुराण,१.१.३

अमृतमयी भागवत-कथा सुनने से मन सुमन बन जाता है, हृदय शुद्ध होता है और परिशुद्ध अन्तःकरण परमात्मा का दिव्यतम निवास माना गया हैः-

पिबन्ति ये भगवत आत्मनः सतां
कथामृतं श्रवणपुटेषु सम्भृतम्।
पुनन्ति ते विषयविदूषिताशयं
व्रजन्ति तच्चरणसरोरुहान्तिकम्।।'

-श्रीमद्भागवतमहापुराण, २.२.३७

भारतीय चिन्तन की चरम परिणति है भजन। आत्मा को अंश तथा परमात्मा को अंशी बताकर दोनों में तादात्म्य स्थापित करना परम अपेक्षित समझा गया-- यही जीवन का अन्यतम लक्ष्य निर्धारित किया गया, जो सर्वथा उपयुक्त और मान्य हुआ :

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत् तन्मयो भवेत्।।

- मुण्डकोपनिषद्, २.२.४

भजन भक्त को भगवान् में लीन करने का सबसे सरल उपाय और सबसे उत्कृष्ट साधन है। महातत्त्वज्ञ एवं अनन्य भगवद्भक्त श्री शुकदेवजी भगवन्नाम-संकीर्तन में इतने लीन हो जाते थे कि महर्षि वेदव्यासजी के 'पुत्र-पुत्र' पुकारने के समय उनकी ओर से पेड़ों ने उत्तर दिया था:

यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं
द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदु-
स्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि।।

-श्रीमद्भागवत-महापुराण, १.२.२

महान् भगवद्भक्तों ने भजन और भगवान् को एक-दूसरे का पर्याय बना दिया। वे भजन गाते, तो भगवान् प्रकट हो जाते अथवा भजन गाते-गाते भगवान् के पास पहुँच जाते। नारद, ध्रुव, प्रह्लाद, अम्बरीष, सुदामा, मीरा, नरसी, नानक, नामदेव, कबीर, सूर, तुलसी आदि ऐसे ही वन्दनीय भक्त हैं। विद्यापति के यहाँ भगवान् शंकर खड़े रहते, गंगा माता निकट पहुँच जातीं। यदि गम्भीरतापूर्वक विचार करें, तो भजन, भक्त और भगवान में समवाय सम्बन्ध है। आत्मा की ध्वनि परमात्मा को तत्क्षण सुनाई पड़ जाती है। परन्तु, उसके लिए मन की तल्लीनता परम अपेक्षित है और मन को तल्लीन करने का सर्वोत्तम साधन भजन ही है। श्रुतदेव भागवत-श्लोकों का गान करते और भगवान् श्रीकृष्ण उनके सामने कुश की चटाई पर बैठ जाते। यह है भजन और भगवान् की अभिन्नता।

श्रीमद्भागवत पुराण ही नहीं, महापुराण है। पुराणों में सृष्टि, प्रलय, वंशानुक्रम, मन्वन्तर, महच्चरित आदि का सविस्तर वर्णन रहता है :

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्।।'

इन सब विषयों का ज्ञान भी अपेक्षित है, पर सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है भगवद्रस अर्थात् भजन। भजन का प्रामुख्य न रहे, तो सब व्यर्थ हो जाता है।

बृहदाकार भागवत महापुराण में बारह स्कन्ध, तीन सौ पैंतीस अध्याय और अठारह हजार श्लोक हैं। इनमें से हर श्लोक का विशिष्ट महत्त्व है और वह सूक्ष्म विश्लेषण की अपेक्षा रखता है। [यह आयोजन-विशेष तो एक दिन का है। अतएव, मैं विस्तार में न जाकर अत्यन्त संक्षेप में कथा-रस- भगवद्रस पर ही आप सुधी श्रोताओं का ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास कर रहा हूँ। इस आयोजन में विश्व के विभिन्न देशों के विशिष्ट विद्वान् एवं विदुषियाँ उपस्थित हैं। मैं तो हिन्दी भाषा-साहित्य का विद्यार्थी हूँ और अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी- सम्मेलन के अवसर पर लन्दन में रह रहा हूँ। आप सबको सादर प्रणाम। (उल्लासपूर्ण करतल-ध्वनि)]

भागवत-प्रवचन के लिए महान् विद्वान् तथा भक्त होना अत्यावश्यक है। परन्तु, मैं न तो विद्वान् हूँ और न ही भक्त। **'विद्यावतां भागवते परीक्षा'** के योग्य तो बिल्कुल नहीं। स्नेहाधिक्य के कारण आपलोगों ने मुझे सर्वसम्मति से अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी-सम्मेलन का अध्यक्ष बना दिया और आज इस अल्पज्ञ को दुर्लभ अवसर प्रदान करने के लिए व्यासपीठ को रिक्त रखा।

आपलोगों के स्नेह से अभिभूत हूँ। -(करतल-ध्वनि) ठीक ही कहा गया है:-

'अश्मापि याति देवत्वं महद्भिः सुप्रतिष्ठितः।'

-सूक्ति, पंचतंत्र

वर्तमान समय में जीवन-दर्शन की स्पष्टता के अभाव में व्यस्तताओं का अधिकाधिक प्रदर्शन हो रहा है। उपभोक्तावाद के महाजाल में सभी देशों के लोग उलझते जा रहे हैं। उन्हें ईश्वर-चिन्तन के लिए, भगवान् का भजन करने के लिए समय ही नहीं मिलता। परन्तु, भगवान् के दर्शन के लिए जब यमुना नदी का तीव्र प्रवाह रुक गया, तब मनुष्य व्यस्त क्षणों में से कुछ पल तो श्रीराधाकृष्ण-संकीर्तन में लगाा ले। कृष्ण-वंशी-ध्वनि सुनकर नदी की आतुरता कितनी बढ़ गई थी ! तरंगों के हाथों से भगवान् के चरणों का स्पर्श करने तथा कमल-फूलों का उपहार चढ़ाने के लिए :

'नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीत-
मावर्तलक्षित मनोभव भग्नवेगाः।
आलिंगनस्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारे-
गृह्णन्ति पादयुगलं कमलोपहाराः।।'

-श्रीमद्भागवत-महापुराण, १०.२१.१५

वृन्दावन में भगवान् श्रीकृष्ण का वंशी-वादन सुनकर मयूर, मृग आदि भी प्रेम-विभोर हो जाया करते थे। मयूर अपने पंखों को फैलाकर बालकृष्ण के प्रति पूर्ण समर्पण का भाव अभिव्यक्त कर नाच उठते थे। तभी तो उनके अनन्य प्रेम को उच्चतम सम्मान देने के उद्देश्य से श्रीकृष्ण मोरपंख को अपने मस्तक पर सादर स्थान देकर अतीव प्रसन्नता का अनुभव करते थे। जीवात्मा को सही अर्थ में परमात्मा ही प्रतिष्ठित कर सकता है। जो स्वयं अप्रतिष्ठित है, निन्दित है, वह दूसरों को क्या प्रतिष्ठित करेगा? वह तो प्रतिष्ठा को चापलूसी का विषय बनाकर स्तरहीनता का परिचय देगा, समाज में घृणा और द्वेष का वातावरण उपस्थित कर देगा, जीवन-मूल्य को बाजार की वस्तुओं के मूल्य से भी कम समझेगा। गोपियाँ आपस में बातें करने के क्रम में कृष्ण के प्रति वन्य जन्तुओं के असीम प्रेम की सराहना करती हैं:

'वृन्दावनं सखि भुवो वितनोति कीर्तिं
यद् देवकीसुतपदाम्बुजलब्धलक्ष्मि।
गोविन्दवेणुमनुमत्तमयूरनृत्यं
प्रेक्ष्याद्रि सान्वपरतान्य समस्तसत्त्वम्।।'

-श्रीमद्भागवत-महापुराण,१०.२१.१०

जन्तु ही नहीं, जड़ भी श्रीकृष्ण के प्रति उत्कट भक्ति का परिचय देता है। मुरली की मधुर ध्वनि सुनकर और कृष्ण-बलरामजी को तेज धूप में गोचारण करते देखकर अचेतन मेघ में भी विलक्षण चेतना- भगवद्भक्ति का उदय हो जाता है। वह अपने शरीर को ही छाता बना लेता है। कुछ बूँदें सात्त्विकता के सुन्दर फूल बन जाती हैं। उन श्रद्धा-समन्वित प्रफुल्ल फूलों को भगवान् के पावन चरणों में समर्पित कर मेघ अपने को धन्य मान लेता है :

दृष्ट्वातपे व्रजपशून् सह राम गोपैः
सञ्चारयन्तमनुवेणुमुदीरयन्तम्।
प्रेमप्रवृद्ध उदितः कुसुमावलीभिः
सख्युर्व्यधात् स्ववपुषाम्बुद आतपत्रम्।।'

-श्रीमद्भागवत-महापुराण, १०.२१.१६

परन्तु, आज का चेतन प्राणी सर्वोत्कृष्ट कहलाने वाला जीव क्या सोचता है? बहुत व्यस्त रहनेवाले लोग मानव-जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं क्या? वे भजन करते हैं? अपने आचरण को परिशुद्धा रखते हैं? 'आचारहीन को वेद भी पवित्र नहीं कर पाते हैं। **'आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः**।'-(विष्णु-धर्मोत्तर पुराण, ३.२५१.५)। भजन ही पवित्र होने का सर्वसुलभ सर्वोत्तम साधन है।

वेद में भी जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति के निमित्त पूरे मन से परमात्मा के अनेक पावन नामों का स्मरण-चिन्तन करते रहने को ही सर्वोत्कृष्ट माध्यम मानने का निर्देश है:-

'नामानि चिद् दधिरे यज्ञियानि।'

-ऋग्वेद, ६.१.४

यजुर्वेद-११.२ भी मन को ईश्वराराधन में लगाने को ही सबसे महत्त्वपूर्ण बताता है :**'युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे। स्वर्ग्याय शक्त्या।।"** ईश्वर को छोड़कर अन्य आश्रय ग्रहण करना निरर्थक है। कारण यह कि चाटुकारिता से आत्मतेज प्रकट नहीं हो पाता। इसलिए वेदवाणी है : **'मा चिदन्यद्'** - ऋग्वेदः ८.१.१- अर्थात् दूसरे साधन में मन मत लगाओ, केवल ईश्वर भजन करो, विहित और मर्यादित कार्य करो।

जीवन का सर्वथा अनुपेक्षणीय प्रश्न उपस्थित किया गया है श्रीमद्भागवत-महापुराण में। वह प्रश्न निश्चय ही सार्वकालिक तथा सार्वदेशिक महत्त्व का है। शुकदेवजी से विनम्रतापूर्वक पूछते हैं राजा परीक्षित :

अतः पृच्छामि संसिद्धिं योगिनां परमं गुरुम्।
पुरुषस्येह यत्कार्यं म्रियमाणस्य सर्वथा।।

श्रीमद्भागवत-महापुराण, १.१९.३६

अर्थात्, मनुष्य मरणशील है और इसलिए उसे एक-न-एक दिन मरणासन्न भी होना ही पड़ता है। ऐसी स्थिति में उसे क्या करना चाहिए, जिससे वह उत्तम गति प्राप्त कर सके?

शुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि आपके इस महाप्रश्न का एकमात्र सही उत्तर यह है कि मनुष्य अपनी सम्पूर्ण शक्ति से भगवान श्री हरि का--श्रीराधाकृष्ण का भजन-स्मरण-कीर्तन-श्रवण करता रहे-- सभी स्थानों और सभी परिस्थितियों में:-

तस्मात् सर्वात्मना राजन् हरिः सर्वत्र सर्वदा।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यो भगवान् नृणाम्।।'

-श्रीमद्भागवत-महापुराण, २.२.३६

आदि शंकराचार्यजी ने भी **'प्राप्ते सन्निहिते मरणे'** में 'भजगोविन्दम्' को ही एकमात्र उपाय बताया था।

हर क्षण और हर स्थान पर परमात्मा का स्मरण इसलिए अनिवार्य माना गया कि सर्वशक्तिमान् और शाश्वत है वह। उस परम चेतन से ही जगत् की सृष्टि, स्थिति और प्रलय से सम्बद्ध समस्त कार्य सम्पादित होते रहते हैं। श्रीमद्भागवत-महापुराण का श्रीगणेश जो 'जन्माद्यस्य' पद से किया गया है, उसका अभिप्राय यही है। उसी अखण्ड चेतन परब्रह्म ने आदिकवि ब्रह्मा को वेद से परिचित कराया। उस रहस्य को समझने में विचक्षण विद्वान् भी मोहग्रस्त हो जाते हैं; भ्रम में पड़ जाया करते हैं। सच तो यह है कि सत्य-सी प्रतीत होनेवाली समस्त सृष्टि ही सत्याभास है। उसी प्रकार, जिस प्रकार सूर्य की तीक्ष्ण किरणों में कहीं जल का, कहीं जल में थल का और कहीं थल में जल का आभास होने लगता है। इस भ्रमात्मक संसार में भ्रम हो जाना अस्वाभाविक नहीं है। परन्तु, भजन सदा-सर्वदा भ्रम-निरपेक्ष ही रहा करता है, क्योंकि वह प्रकृत्या भगवत्सापेक्ष है। परब्रह्म को 'उदैतपुरुषः' विश्व से बहिर्भूत कहा गया है। श्रीराधाकृष्ण की लीलाएँ भी दिव्य हैं; चिन्मयी भावना में मृण्मयी प्रवृत्ति के लिए कोई गुंजाइश नहीं रह जातीं; सच्चे भजन में विकार का समावेश नहीं हो सकता।

सत्त्व, रज और तम, इन तीन गुणों से परिचालित विनाशशील सृष्टि जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति अवस्थाओं में विद्यमान प्रतीत होती है। इस विनाशशील सृष्टि में अविनाशी का अनुसंधान ही अध्यात्म है। इसी में मानव जीवन का श्रेय सन्निहित है। इस श्रेय की प्राप्ति तभी संभव है, जब परमात्मा में दृढ़ अनुराग हो और इसके लिए पहले पूर्ण आस्था और अटूट विश्वास का होना परम अपेक्षित है। कारण यह कि भ्रम-निवारण के विना सत्य का साक्षात्कार संभव नहीं। भ्रम-निवारण और विलक्षण अनुराग को जागरित करनेवाले उत्कृष्टतम साधनों में 'श्रीमद्भागवत-महापुराण' के श्रद्धापूर्वक श्रवण का स्थान अन्यतम है। 'भागवत' में सर्वप्रथम **'सत्यं परं धीमहि'** अर्थात् परम सत्यस्वरूप परमात्मा के ध्यान का विधान है, क्योंकि तभी भ्रम का निवारण हो पाएगाः-

यन्माद्यस्य यतोऽन्वयादि तरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्महृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि।।'

-श्रीमद्भागवत-महापुराण, १.१.१

तत्त्व-साधना की दृष्टि से 'ब्रह्मसूत्र' में भी ऐसा ही चिन्तन अभिव्यक्त है:-

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा। जन्माद्यस्य यतः। शास्त्रयोनित्वात्। तत्तु समन्वयात्।'

-महर्षि व्यास।

श्रीमद्भागवत भी शास्त्र है- सूक्ष्म तत्त्वों का विशद विवेचन है इसमें। परन्तु, शास्त्र से बढ़कर पुराण है यह। और, सबसे बढ़कर है भजन का अक्षय स्रोत। 'भागवत' शब्द उच्चरित होते ही भजन अपने आप आरम्भ हो जाता है--हृदय में भगवद्रस उमड़ पड़ता है। अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव होने लगता है।

भक्ति-भावना को अमित विस्तार प्रदान करने के उद्देश्य से रचित'श्रीमद्भागवत-महापुराण' में श्रीराधाकृष्ण की इतनी दिव्य लीलाओं की आकर्षक व्यंजना है कि भजन के लिए अनायास ही अनेक सन्दर्भ उपस्थित हो जाते हैं। श्रीकृष्ण-प्राकट्य-लीला, जन्मोत्सव, बालक्रीड़ा, मक्खन-चोरी-लीला, वृन्दावन-लीला, गोचारण-लीला, कालिय-दमन-लीला, गोवर्द्धन-लीला, दधिलीला, कंस-दमन-लीला आदि ऐसे प्रसंग हैं, जिनके आधार पर गेय पद स्वतः निस्सृत होने लगते हैं। महाकवि सूरदासजी ने कृष्ण-जन्मोत्सव के समय के सौंदर्य और आनन्दोल्लास की अत्युत्कृष्ट व्यंजना की है :

सोभासिंधु न अंत रही री।
नंद-भवन भरि पूरि उमंगि चलि,
ब्रज की बीथिनि फिरति बही री।।'

- सूरसागर,१०.६४७

परब्रह्म ने जब नवजात मानव-शिशु का रूप ग्रहण कर लिया, तब उसका जातकर्म-संस्कार भी परम अपेक्षित हो गया। नन्द बाबा ने वेदज्ञ ब्राह्मणों को सादर बुलवाकर स्वस्तिवाचन करवाया। साथ ही, देवी-देवताओं और पितरों की विधिवत् पूजा करवायी। वैदिक धार्मिक संस्कार भारतीय जीवन का अन्यतम वैशिष्ट्य जो है :

नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः।
आहूय विप्रान् वेदज्ञान् स्नातः शुचिरलंकृतः।।
वाचयित्वा स्वस्त्ययनं जातकर्मात्मजस्य वै।
कारयामास विधिवत् पितृदेवार्चनं तथा।।'

-श्रीमद्भागवत-महापुराण,१०.५.१-२

ज्ञातव्य है कि सनातन धर्म अर्थात् हिन्दू धर्म के पाँच प्रमुख आधार हैं : वेद, गौ, ब्राह्मण, तप और यज्ञ। देवताओं के भी मूल आश्रय भगवान् विष्णु ही हैं- विष्णु एवं शिव में पार्थक्य का प्रश्न अनपेक्षित है। विष्णु वहाँ, जहाँ सनातन धर्म; दोनों अभिन्न हैं। भागवत-महापुराण में सनातन धर्म का स्वरूप-विश्लेषण बड़ी स्पष्टता से किया गया है। इसलिए, हिन्दू धर्म के सन्दर्भ में नूतन अथवा पुरातन का प्रश्न निरर्थक है, क्योंकि सत्य सनातन है वह:

मूलं हि विष्णुर्देवानां यत्र धर्मः सनातनः।
तस्य च ब्रह्म गोविप्रास्तपो यज्ञाः सदक्षिणाः।।'

-श्रीमद्भागवत-महापुराण, १०.४.३६

लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्ण की लीला को आलोच्य विषय बनाकर नहीं समझा जा सकता। अपेक्षा यह होनी चाहिए कि उनकी लीलाओं में निहित दिव्य, विलक्षण शक्तियों को कैसे समझें; उनके चरण-कमलों में अचल-निश्छल भक्ति कैसे हो।

गोपियाँ कुछ दिनों तक कंस को कृष्णावतार से अनभिज्ञ रखने के उद्देश्य से बालरूप परब्रह्म को कठपुतली-सदृश दर्शाती हैं- मक्खन और दही का प्रलोभन देकर:

गोपीभिः स्तोभितो नृत्यद् भगवान् बालवत् क्वचित्।
उ ायति क्वचिन्मुग्धस्तद्वशो दारुयन्त्रवत्।।

-श्रीमद्भागवत-महापुराण,१०.११.७

यहाँ निश्चय ही गोपनीयता की भावना अतिशय प्रबल है। आजकल एक-से-एक गोपनीय पत्र समय से पहले ही प्रकाशित हो जाते हैं। परन्तु, लाख प्रयत्नों के बावजूद मथुरा के कंस को- राजा को गोकुल में पल-खेल रहे बालकृष्ण का पता ही नहीं चला। साथ ही, प्रेम की डोर सबसे सुदृढ़ होती है। फिर, भारतीय संस्कृति मातृ-भावना बनकर उत्कृष्टतम रूप में अभिव्यंजित होती रही है। माता कौशल्याजी चतुर्भुज विष्णु को दो हाथोंवाला नवजात शिशु हो जाने का आदेश प्रदान करती हैं तथा माता यशोदाजी शिक्षा-संस्कार देने के लिए परब्रह्म के कान तक पकड़ लेती हैं। भारत में मातृ-पूजा का, शक्ति-पूजा का प्रचलन मानवीय संस्कृति का अन्यतम निदर्शन है। नारी को सम्मान के सर्वोच्च शिखर पर सुप्रतिष्ठित करना मानवता का प्रथम तथा प्रमुख लक्षण है। (करतल-ध्वनि)।

श्रीमद्भागवत-महापुराण इस बात पर अत्यधिक बल देता है कि सफल जीवन के लिए मनुष्य का सरल और निरभिमान होना अनिवार्य है। भजन भी सरल हृदय हुए विना नहीं किया जा सकता। व्यक्ति हो या समाज अथवा विश्व, उसका अहंकारहीन होना अत्यावश्यक है, अन्यथा अशान्ति, अराजकता, अन्याय, अत्याचार, आतंकवाद, उग्रवाद, असंतुलन आदि का अन्त नहीं हो सकता। बालकृष्ण द्वारा अग्निपान, यमुनाजल से कालिय का निष्कासन, इन्द्र-दर्प को समाप्त कर देने के लिए गोवर्धन-धारण आदि ऐसे ही कार्य हैं, जिनसे समाज भयमुक्त तथा तनावमुक्त हो जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने सामाजिक संगठन को सुदृढ़ कर इन्द्र के मिथ्याभिमान को चूर कर दिया :

न हि सद्भावयुक्तानां सुराणामीश विस्मयः।
मत्तोऽसतां मानभंगः प्रशमायोपकल्पते।।'

-श्रीमद्भागवत-महापुराण, १०.२५.१७

रासलीला सर्वाधिक चर्चित प्रसंग है श्रीमद्भागवत-महापुराण में। साथ ही, भक्ति की चरम परिणति का वर्णनातीत दृश्य भी है वह। रासलीला तो नित्य है। महारास का समय कितना उपयुक्त और वातावरण कितना अनुकूल था : अति मनोहर शरद ऋतु, बेली-चमेली से सुवासित विशाल और रमणीक प्राकृतिक परिसर, वृन्दावन का अनुपम सौंदर्य, पूर्णिमा का अत्यन्त आकर्षक परिदृश्य, चन्द्रदेव का अखण्ड मण्डल, सोलह कलाओं से परिपूर्ण छिटकती अद्भुत आभा, नूतन केसर के समान रक्ताभ, अमृत के समुद्र के समान नयनाभिराम दिव्यरात्रि, अनुराग के रंग में रंजित समग्र वन-उपवन, यमुना के पावन पुलिन पर वंशीवट के निकट त्रिभंगी मुद्रा में खड़े भुवनमोहन श्रीकृष्ण; दूर-दूर तक गूँज रही मुरली की मधुर ध्वनि, अपूर्व और अप्रतिम शोभा- श्री व्याप्त थी चारों ओर। (हर्षोल्लासपूर्ण करतल-ध्वनि)। शुकदेवजी कहते हैं :

दृष्ट्वा कुमुद्वन्तमखण्डमण्डलं
रमाननाभं नव कु मारुणम्।
वनं च तत्कोमलगोभिरञ्जितं
जगौ कलं वामदृशां मनोहरम्।।

-श्रीमद्भागवत-महापुराण, १०.२९.३

'श्रीमद्भागवत-महापुराण' में स्पष्टतया राधाजी का नामोच्चार नहीं किया गया। कहते हैं, राधाजी का नाम लेते ही शुकदेवजी उनके चरणों में लीन हो जाते हैं। वैसी स्थिति में वे कई वर्षों में भागवत-कथा सुना पाते। परन्तु, उन्हें सात दिनों में ही भागवत-कथा सुनाकर राजा परीक्षित का उद्धार करना था। शमीक ऋषि के अति तेजस्वी बालक शृंगी ने राजा परीक्षित को **'तक्षकः सप्तमेऽहनि'** का शाप दे दिया था, जिसे किसी भी प्रकार टाला नहीं जा सकता था। आप सब जानते हैं कि प्रमादवश राजा परीक्षित ने धनुष की नोक से मृत सर्प को उठाकर ईश्वर-चिन्तन में लीन शमीक ऋषि के गले में डाल दिया था, जो निर्विवाद रूप से अमर्यादित आचरण था। राजा के लिए शासकीय क्षमता के साथ-साथ मर्यादाप्रियता, विवेकशीलता, सेवापरायणता तथा विनम्रता

भी परम अपेक्षित है। जो राजा-राजनेता ज्ञानियों का सम्यक् सम्मान नहीं करेगा, उसे तक्षक अकाल ही अपना ग्रास अवश्य बना लेगा।

निस्सन्देह, राधाजी के बिना रासलीला नहीं हो सकती। 'देवी भागवत' में वृषभानु-कृत्तिका-सुता राधाजी को स्पष्ट शब्दों में 'रासेश्वरी' की संज्ञा से अभिहित किया गया है:

कृष्णप्राणाधिका देवी तदधीनो विभुर्यतः।
रासेश्वरी तस्य नित्यं तया विना न तिष्ठति।।'

रासलीला के रहस्य को समझने के लिए श्रद्धा, निष्ठा, निर्मल मन और अविचल भक्ति का होना परम आवश्यक है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गोपियों का परिचय देते हुए कहा है : जैसे लावा से अंकुर नहीं उग सकता, वैसे ही गोपियों में वासनात्मक प्रवृत्ति नहीं जग सकती:

न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते।
भर्जिता क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते।।

- श्रीमद्भागवत-माहापुराण,१०.२२.२

यह कहना कि चूँकि भगवान् श्रीकृष्ण लीलापुरुषोत्तम थे, इसलिए उन्होंने मर्यादा-संरक्षक की भूमिका नहीं निभाई, सत्य का उपहास करना है। वे सदा मर्यादा के पक्षधर और संरक्षक रहे। मर्यादा के बिना भारतीय संस्कृति की सही पहचान ही नहीं हो सकती। उन्होंने डिण्डिमनाद के साथ गोपियों से कहा था: जो स्त्रियाँ उत्तम लोक चाहती हैं, वे अपने पति को छोड़कर अन्य किसी पुरुष के साथ वैसा व्यवहार न करें; चाहे उनका पति संस्कार-हीन, धन-हीन, विद्या-हीन,रोगी अथवा वृद्धा ही क्यों न हो:

दुःशीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि वा।
पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी।।

-श्रीमद्भागवत-महापुराण, १०.२९.२५

महारास सर्वांशतः चिन्मयी भावना से प्रेरित तथा आयोजित था, धरती पर गोलोक उतर आया था। ऐसा प्रतीत होता था, जैसे आत्मा परमात्मा के साथ हो। उसका स्वरूप अलौकिक; बड़ा विलक्षण था :

रासोत्सवः सम्प्रवृत्तो गोपीमण्डलमण्डितः
योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः।।

-श्रीमद्भागवत-महापुराण, १०.३३.३

फिर, महारास के दर्शक कौन थे? आकाश में सैकड़ों विमानों की भीड़ लग गई थी। सभी देवता अपनी-अपनी अर्द्धांगिनी के साथ रासोत्सव के दर्शन की अभिलाषा से वहाँ पधारे थे :

यं मन्येरन् नभस्तावद् विमानशतसंकुलम्।

-भागवत,१०.३३.४

महारास यदि कोई अनुचित-अमर्यादित, वेद-विरुद्ध कार्य होता, तो देवतागण अपनी-अपनी अर्द्धांगिनी के साथ उसे देखने क्यों आते? और तो और, भगवान् शंकर ने रास में सम्मिलित होने की उत्कंठा दिखायी, तो उन्हें पहले गोपी-भाव से परिपूर्ण समर्पण का सिद्धान्त स्वीकारना पड़ा। यदि क्षण-भर के लिए लौकिकता की ही दृष्टि से देखें, तो महारास के समय कृष्ण सात वर्ष के बालक थे। उसी समय के आसपास उन्होंने गोवर्द्धन-लीला रची थी और उसमें **'यः सप्तहायनो बालः करेणैकेन लीलया'** की चर्चा स्पष्ट रूप से की गई है।

अब सन्देह के नाम पर तो राजा परीक्षित को भी सन्देह हुआ था। उन्होंने शुकदेवजी से प्रश्न किया था : धर्म-रक्षक कृष्ण ने परस्त्री का स्पर्श क्यों किया? शुकदेवजी ने राजा परीक्षित की शंका का सही निवारण करते हुए कहा:

यत्पादपंकजपरागनिषेवतृप्ता
योगप्रभावविधुताखिलकर्मबन्धाः।
स्वैरं चरन्ति मुनयोऽपि न नह्यमाना-
स्तस्येच्छयात्तवपुषः कुतएव बन्धः।।'

- श्रीमद्भागवत-महापुराण,१०.३३.३५

अर्थात् पूर्ण चिन्मय में मृण्मयी भावना का अनुसंधान ही व्यर्थ है। बन्धन-मुक्त में बन्धन कहाँ, कैसे और क्यों? गोपियाँ आत्मा की प्रतीक हैं। वे कृष्ण-रूप परब्रह्म से मिलने के लिए आतुर थीं। 'श्रीमद्भागवत'

भक्तिरस से ओतप्रोत है। उसमें वासना का प्रश्न उठाना अनुचित है। 'श्रीरामचरितमानस' के सम्बन्ध में महाकवि तुलसीदासजी ने भी यही कहा है:

'इहाँ न बिषय कथा रस नाना।'--(१.३७.२)।

सत्यतः, महारास जीवन का वह उच्चतम धरातल है, जहाँ वासना का लेश नहीं रहता, मर्यादाहीनता का तो प्रश्न ही नहीं उठता, किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं रह जाता। केवल अभेदप्रतीति होती है। आत्मा-परमात्मा, अंश-अंशी का अनिर्वचनीय मिलन होता है। वह होता है चिन्मय अखण्ड आनन्द का अन्यतम निदर्शन।

भागवत-धर्म का प्रमुख लक्षण है दीनों के प्रति दया रखना। निष्ठापूर्वक पूर्ण क्षमता तथा सतर्कता से अपने दायित्व का पालन करना और पीड़ितों की सेवा करना ही सबसे बड़ी तपस्या है, सबसे बड़ी ईश्वरोपासना है:-

तप्यन्ते लोकतापेन साधवः प्रायशो जनाः।
परमाराधनं तद्धि पुरुषस्याखिलात्मनः।।'

-श्रीमद्भागवत-महापुराण, ८.७.४४

'श्रीरामचरितमानस' में तुलसीदासजी ने श्रीसीतारामजी की वन्दना करने में न केवल उनकी एकात्मता-अभिन्नता की बात कही है, अपितु उन्हें दीन-दुखियों के प्रति पूर्ण संवेदनशील दिखाकर मानवता को सदा-सर्वदा के लिए कृतकृत्य कर दिया है :

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउं सीताराम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न।।

-१.१८

उल्लेख्य है कि मानवता के महान् दिशा-निर्देशक रहे हैं कविकुलगुरु कालिदास। उन्होंने 'रघुवंश' महाकाव्य का श्रीगणेश भगवान् शंकर तथा माता पार्वती की अभिन्नता की पावन व्यंजना से किया है :

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।।'

परन्तु, तुलसीदासजी ने दुखियों के प्रति संवेदना की अतिरिक्त अभिव्यंजना से काव्य-प्रसंग को अत्यधिक मार्मिक बना दिया।

भजन- ईश्वर-महिमा का सच्चा गान तब प्रकट होता है, जब दूसरों के दुःख को दूर करने का उत्साह उमड़ आता है। रोते हुए के आँसू पोंछना, गिरे हुए को उठा देना, भूखों के बीच भोजन का प्रबन्ध करना, प्यासे को जल देना, वस्त्रहीनों को परिधान प्रदान करना, निस्सहायों को सहारा देना, अशिक्षितों को शिक्षित बनाना, अंधकार में प्रकाश फैलाना ही ईश्वर में पूर्ण आस्था रखने का स्वाभाविक लक्षण है, यही चरित्र-निर्माण है और यही है 'श्रीमद्भागवत-महापुराण' के सही अध्ययन-चिन्तन का अप्रतिम प्रतिफलन। (करतल-ध्वनि)।

वस्तुतः, शरीर से, वाणी से, मन से, इन्द्रियों से, बुद्धि से, स्वभाव-संस्कार से मनुष्य जो भी करे, उसे परमात्मा को ही समर्पित करे :

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा
बुद्धयात्मना वानुसृतस्वभावात्।
करोति यद् यत् सकलं परस्मै
नारायणायेति समर्पयेत्तत्।।'

-श्रीमद्भागवत-महापुराण, ११.२.३६

जय श्रीराधे!
जय श्रीकृष्ण!
जय श्रीरामदूत कृष्णप्रिय
संकटमोचन महावीर हनुमान्!

-(कैसेट से गृहीत)

◆◆

राजा बलि की दानशीलता

▶*डॉ. जयनन्दन पाण्डेय*

अष्टादश पुराणों में ''श्रीमद्भागवत पुराण'' सर्वश्रेष्ठ पुराण माना जाता है। इसमें भगवान् की अनेक लीलाओं और कथाओं का वर्णन है। इस पुराण का वाचन एवं श्रवण करनेवाला मानव भगवान् का प्रियपात्र होता है, जैसा कि भगवान् ने स्वयं कहा है-

मत्कथावाचकं नित्यं
मत्कथाश्रवणे रतम्।
मत्कथाप्रीतमनसं
नाहं त्यक्षामि तं नरम्।।

स्वयं भगवान् ने श्री ब्रह्माजी से कहा है-

दृष्ट्वा भागवतं दूरात्
प्रक्रमेत सम्मुखं हि यः।
पदेपदे ऽश्वमेधस्य
फलं प्राप्नोत्यशंसयम्।।

अर्थात् जो व्यक्ति श्रीमद्भागवत को दूर से ही देखकर उसके सम्मुख जाता है, वह एक-एक पग पर अश्वमेघ यज्ञ के पुण्य को प्राप्त करता है- इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

यद्यपि इस पुराण में अनेक कथाएँ हैं तथापि मैं इसकी एक छोटी कथा 'राजबलि की दानशीलता और भगवान् वामन की याचकता'' पर अपने भाव को अभिव्यक्त करने जा रहा है।

वामन अवतार विष्णु द्वारा राजा बलि बन्धन की कथा तथा भगवान् वामन द्वारा तीन पद से तीनों लोकों को माप लेने वाली कथा अत्यन्त प्राचीन है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 154वें सूक्त 'विष्णु-सूक्त' में यह कथा बार बार कही गयी है और विष्णु का एक नाम 'त्रिविक्रम' माना गया है – विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विमसे रजांसि । यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थै विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ।। अर्थात् अब में विष्णु के पराक्रमों की बात कहता हूँ, जिन्होंने पृथ्वी से सम्बद्ध लोकों को माप लिया है; तीन डग भर कर जिन्होंने ऊपर भी अन्तरिक्ष को स्थिर कर दिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि वामनावतार भगवान् विष्णु के द्वारा राजा बलि के बन्धन की कथा का उत्स ऋग्वेद का यही स्थल है। श्रीमद्भागवत पुराण में इस कथा में राजा बलि के उदात्त स्वरूप का वर्णन आया है और उन्हें परम भागवत मानकर महिमामण्डित किया गया है। इसी प्रसंग पर विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं **डॉ. जयनन्दन पाण्डेय**

राजा परीक्षित को व्यासनन्दन श्रीशुकेदवजी ने हरिद्वार की पावन भूमि पर श्रीमद्भागवत पुराण की कथा सुनायी थी, जिससे राजा परीक्षित ने मृत्युभय से छुटकर मोक्ष प्राप्त किया था। एक बार कथा-प्रसंग में राजा परीक्षित ने श्री शुकदेवजी से कहा- भगवान् श्रीहरि स्वयं ही सबसे स्वामी हैं। फिर उन्होंने दीन-हीन की भाँति राजा बलि से तीन पग भूमि क्यों माँगी? और जब माँगी गई वस्तु मिल ही गई तो राजा बलि को उन्होंने क्यों बाँधा? इन बातों को सुनने की मेरी उत्कट अभिलाषा है, कृपया विस्तार से बताएँ।

श्री शुकदेवजी ने कहा- हे परीक्षित्! एकबार इन्द्र ने राजा बलि को पराजित कर उसका सर्वस्व छीन लिया

था; साथ ही राजा बलि के प्राण भी ले लिए। तब दैत्य गुरु शुक्राचार्य ने अपनी संजीवनी विद्या से राजा बलि को पुनरुज्जीवित कर दिया। यह देखकर राजा बलि ने अपना सर्वस्व शुक्राचार्य के चरणों पर न्योछावर कर दिया। उस दिन राजा बलि भृगुवंशी ब्राह्मणों की सेवा में तन-मन-धन से लगे रहते थे। शुक्राचार्य एवं उनके वंशज समस्त भृगुवंशी ब्राह्मण भी राजा बलि पर प्रसन्न रहने लगे। प्रभावशाली भृगुवंशी ब्राह्मणों ने शुक्राचार्य के आचार्यत्व में राजा बलि से एक विश्वजित् नामक यज्ञ करवाया। यज्ञ-प्रभाव से उस यज्ञाग्नि से एक सोने का रथ निकला साथ ही दो अक्षय तरकस तथा दिव्य कवच भी निकले। इसके बाद-

अथारुह्य रथं दिव्यं भृगुदत्तं महारथः।
सुसन्नद्धरोऽथ संग्राम धन्वी खड्गी धृतेषुधिः।।

श्रीमद्भागवत : ८/१०/८

इसी दिव्य रथ पर रथारूढ़ होकर राजा बलि ने कवच, धनुष एवं तलवार धारण कर अमरावती (स्वर्ग) पर चढ़ाई करने के लिए प्रस्थान किया। उस समय उनकी शोभा देखने में बन रही थी। उनके साथ उन्हीं के समान ऐश्वर्य, बल और विभूति वाले दैत्य सेनापति भी अपनी अपनी सेना लेकर साथ हो गए। पूरे युद्ध-कौशल के साथ राजा बलि ने अमरावती पर चढ़ाई कर दी। यह देखकर देवराज इन्द्र ने देवगुरु बृहस्पति से कहा-

ब्रूहि कारणमेतस्य दुर्धर्षत्वस्य मद्रिपोः।
ओजः सहो बलं तेजो यत तत्समुद्यमः।।

श्रीमद्भागवत : ८/१०/२७

आप कृपाकर मुझे बतलाइए कि मेरे शत्रु को पराक्रम इस तरह क्यों बढ़ गया है जिसे किसी भी तरह दबाया नहीं जा सकता। इसके शरीर, मन और इन्द्रियों में इतना बल और इतना तेज कहाँ से आ गया है? कृपया बताएँ।

देवगुरु बृहस्पति ने कहा- इन्द्र! तुम्हारे शत्रु दैत्याधिपति राजाबलि के पराक्रम-वर्द्धन का कारण मैं जानता हूँ। ब्रह्मवादी भृगुवंशी ब्राह्मणों ने ही अपने शिष्य बलि को तेज और शौर्य प्रदान किया है। तुम इसे इस समय युद्ध में जीत नहीं सकते। अतः इस समय छिप जाओ। इसके सिवा कोई अन्य विकल्प नहीं। तब देवराज इन्द्र छिप गए और विरोचन नन्दन बलि से अमरावती पर विजय प्राप्त कर लिया। साथ ही विश्वविजयी बन गए। राजा बलि ने शुक्राचार्य के निदेशानुसार सौ अश्वमेघ यज्ञ किए जिनके प्रभाव से राजा बलि की कीर्त्ति-कौमुदी तीनों लोकों में फैल गई। ब्राह्मण देवताओं की सत्कृपा से प्राप्त समृद्ध राज्यलक्ष्मी का वे बड़ी उदारता एवं विनम्रता से उपभोग करने लगे। उनके द्वार से कोई भी याचक अपनी मांग की वस्तु पाये बिना न लौट जाय, इसपर वे पूरा ध्यान देने लगे। राजा बलि की उत्कृष्ट दानशीलता की सूचना सब जगह फैलने लगी।

इधर जब देवता स्वर्ग से भागकर छिप गए और स्वर्ग पर राजा बलि का आधिपत्य हो गया। तब देवमाता अदिति ने अपने पति कश्यप ऋषि के निदेशानुसार 'पयोव्रत' को धारण किया और जिसके पुण्य प्रभाव से भगवान् पुरुषोत्तम उसके सामने प्रकट हुए। वे पीताम्बर धारण किए हुए थे। उनकी चार भुजाएँ थीं और शंख, चक्र, गदा लिये हुए थे। देवमाता अदिति ने उनसे प्रार्थना की- "आप यज्ञ के स्वामी हैं, स्वयं यज्ञ भी आप ही हैं। आपके चरण-कमलों का आश्रय लेकर लोग भवसागर से तर जाते हैं।" कृपाकर मेरे दुःख दूर करें। तब भगवान् ने कहा- "हे देवजननी अदिति! तुम्हारी अभिलाषा को मैं जानता हूँ। दैत्यों ने तुम्हारे पुत्रों की सम्पत्ति छीन ली है, उन्हें स्वर्ग से खदेड़ दिया है। तुम्हारे पुत्रों को सर्वस्व प्रदान करने के लिए मैं तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न हाऊँगा। इस गोपनीय बात को किसी से मत कहना। इतना कहकर भगवान् पुरुषोत्तम अन्तर्धान हो गए।

इत्थं विरिञ्चस्तुतकर्मवीर्यः
प्रादुर्बभूवामृतभूरदित्याम्।
चतुर्भुजः शंखगदाब्जचक्रः
पिशंङ्गवासा नलिनायतेक्षणः।।

(श्रीमद्भागवत : ८/१८/१)

इस प्रकार जब ब्रह्माजी ने भगवान की शक्ति और लीला की स्तुति की तब जन्म-मृत्यु रहित भगवान् अदिति के सामने प्रकट हुए। शंख, चक्र, गदा और कमल धारण किए कमल के समान बड़े-बड़े नेत्र वाले भगवान् को अदिति ने अपने सामने देखा। उस समय स्वर्ग लोक, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, देवता, गौ, द्विज तथा पर्वत- इन सबके हृदय में हर्ष का संचार हो गया। मुनि, देवता, पितर, अग्नि आदि उस वामन भगवान की स्तुति करने लगे। भगवान् को ब्रह्मचारी के रूप में देखकर महर्षियों को बड़ा आनन्द हुआ। अदिति ऐसे पुत्र को अपने गर्भ से उत्पन्न देखकर हर्षित होने लगी।

कथा को आगे बढ़ाते हुए श्री शुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा- ''हे राजन्! कुछ दिनों के बाद जब वामन भगवान् ने सुना कि सब प्रकार की सामग्रियों से सम्पन्न यशस्वी बलि भृगुवंशी ब्राह्मणों के निदेशानुसार बहुत से अश्वमेव यज्ञ कर रहे हैं तब उन्होंने वहाँ के लिए यात्रा की। नर्मदा नदी के तटपर 'भृगुकच्छ' नामक स्थान पर वह यज्ञानुष्ठान चल रहा था। वहाँ जब बटुकरूपधारी भगवान् वामन के उस सुन्दर रूप को राजा बलि एवं भृगुवंशी ब्राह्मणों ने देखा तो सब के सब उठ खड़े हुए और उनका स्वागत-शिष्टाचार किया।

स्वागतं ते नमस्तुभ्यं ब्रह्मन् किं करवाम ते।
ब्रह्मर्षीणां तपः साक्षान्मन्ये त्वार्यवपुर्धरम्।।

(श्रीमद्भागवत : ८/१८/२६)

राजा बलि ने कहा- ''हे ब्राह्मण कुमार! आपका इस समय आना मेरे लिए मंगलप्रद है। आपको मैं नमस्कार करता हूँ। आप आज्ञा दें, मैं आपके लिए क्या करूँ? आर्य! ऐसा मालूम पड़ता है कि बड़े-बड़े ब्रह्मर्षियों की तपस्या ही स्वयं मूर्त्तिमान होकर स्वयं मेरे सामने आयी है। आज आपके शुभागमन से मेरा वंश एवं मेरे पितर तृप्त हो गए हैं। मेरा यह यज्ञ भी सफल हो गया है। आप कहें कि आपकी क्या और कैसी सेवा करूँ? मुझे लगता है कि आप कुछ चाहे हैं। हे परमपूज्य ब्रह्मचारी जीं! आपके मन में जो भी इच्छा हो मुझसे कहें- गाय, सोना, सकल सामग्रियों से परिपूर्ण महल, खाने-पीने की अभीष्ट वस्तु अथवा विवाह के योग्य ब्राह्मण-कन्या- इन्में से जो भी इच्छा हो, माँग लें।''

ऐसे विनीत वचन सुनकर भगवान् वामन ने कहा- "आप भृगुवंशी ब्राह्मण शुक्राचार्य के परम प्रमाण हैं और पितामह प्रह्लादजी के पौत्र हैं। आपकी इस विनम्रता से मैं प्रभावित हूँ। आप उस वंश के यशस्वी राजा हैं जिसने कभी भी दान से पीछे नहीं हटा। हे राजन्! आपके पूज्य पिता प्रह्लाद नन्दन विरोचन भी एक महान् ब्राह्मण भक्त थे। एकबार उनके शत्रु देवताओं ने ब्राह्मणों का वेष बनाकर उनसे उनकी आयु का दान माँग तो उन्होंने ब्राह्मणों का छल जानते हुए भी अपनी आयु दे डाली। आप भी तो उसी वंश के दानवीर हैं। लेकिन मैं यह भी जानता हूँ कि विद्वान् पुरुष को केवल अपनी आवश्यकता के अनुसार ही दान स्वीकार करना चाहिए। इससे वह ''प्रतिग्रहजन्य' पाप से बच जाता है। इसलिए आप यदि मुझ पर प्रसन्न हैं तो आपसे थोड़ी-सी पृथ्वी- केवल अपने पैरों से तीन पग (डग) माँगता हूँ।

''पदाति त्रीणि दैत्येन्द्र सम्मितानि पदा मम''।

(श्रीमद्भागवत : ८/१९/१६)

भगवान् बलि की माँग सुनकर राजा बलि ने कहा- ब्राह्मण कुमार! तुम्हारी बातें तो वृद्धों जैसी हैं, परन्तु तुम्हारी बुद्धि बालक जैसी। देने को तो मैं द्वीप का द्वीप दे सकता हूँ चूँकि मैं तीनों लोकों का अधिपति हूँ। मैं आपको वैसा दान देना चाहता हूँ जिससे आपको जीवन भर किसी से कुछ माँगने की आवश्यकता ही न पड़े परन्तु भगवान् वामन अपनी माँग पर अडिग रहे और राजा बलि तीन पग जमीन देने के लिए तैयार हो गए।

तभी दैत्य गुरु शुक्राचार्य ने राजा बलि को सचेत किया और कहा-

एष वैरोचने साक्षाद् भगवान् विष्णुरव्ययः।
कश्यपाददितेर्जातो देवानां कार्यसाधकः।।

(श्रीमद्भागवत : ८/१९/३०)

हे विरोचन कुमार! ये स्वयं अविनाशी विष्णु हैं जो देवताओं के कार्य साधने तुम्हारे पास आए हैं। इनकी उत्पत्ति कश्यप की पत्नी अदिति के गर्भ से हुई है। तुमने अनजाने में इन्हें तीन पग भूमि देने की प्रतिज्ञा कर भारी भूल की है। ये तुमसे धन, ऐश्वर्य, कीर्त्ति और लक्ष्मी-सब कुछ तुमसे छीनकर इन्द्र को प्रदान कर देंगे। ये विश्वरूप हैं। ये तीन पग में सारे लोकों को नाप लेंगे। तब तुम्हारा निर्वाह कैसे होगा? इसलिए-

स्त्रीषु नर्मविवाहे च वृत्यर्थे प्राणसंकटे।
गोब्राह्मणार्थे हिंसायां नानृतं स्याज्जुगुप्सितम्।।

(श्रीमद्भागवत : ८/१९/४३)

स्त्रियों को प्रसन्न करने के लिए हास-परिहास में विवाह में, कन्या की प्रशंसा करते समय अपनी जीविका की रक्षा करते समय के लिए, किसी को मृत्यु से बचाने के लिए असत्य बोलना उतना निन्दनीय नहीं है। अतः तुम अपनी प्रतिज्ञा से विलग हो सकते हो तभी तुम्हारी जीविका की रक्षा हो सकती है।''

गुरु शुक्राचार्य के ऐसे वचन सुनकर राजा बलि ने कहा- ''यद्यपि आपके कथनानुसार अर्थ, काम, यश और आजीविका की रक्षा ही गृहस्थों का धर्म है तथापि मैं केवल गार्हस्थ्य धर्मपालक ही नहीं अपितु मैं प्रह्लादजी का पौत्र हूँ। एक बार ब्राह्मण को दे देने की प्रतिज्ञा कर मैं कैसे कहूँ कि 'मैं तुम्हें नहीं दूँगा।'

नाहं बिभेमि निरयान्नाधयन्यादसुखार्णवात्।
न स्थानच्यवनान्मृत्योर्यथा विप्रप्रम्भलात्।।

(श्रीमद्भागवत : ८/२०/५)

गुरुवर! मैं नरक से, दरिद्रता से, दुःख के समुद्र से, अपने राज्य के नाश से और मृत्यु से भी उतना नहीं डरता जितना ब्राह्मण के आगे प्रतिज्ञा करके उसे धोखा देने से डरता हूँ। दधीचि, शिवि आदि महापुरुषों ने अपने परमप्रिय दुस्त्याज्य प्राणों का त्याग करके भी प्राणियों की भलाई की फिर पृथ्वी आदि वस्तुओं का दान देने में सोंच-विचार करने की क्या आवश्यकता है? ये स्वयं अगर विष्णु भी हैं और इन्होंने मेरे भय से ब्राह्मण का रूप धारण किया है तथापि एक ब्राह्मण को दान देने के विचार से इन्हें मैं पृथ्वी का दान अवश्य दूँगा। इसपर गुरु शुक्राचार्य ने राजा बलि को लक्ष्मी विहीन हो जाने का शाप दे दिया।

उसी समय एक अद्भुत घटना घटी और अनन्त भगवान् (वामन भगवान्) वह त्रिगुणात्मक रूप बढ़ने लगा। उनका रूप यहाँ तक बढ़ा कि पृथ्वी, आकाश, दिशाएँ, स्वर्ग, पाताल, समुद्र, पुश-पक्षी, मनुष्य, देवता और ऋषि सबके सब समा गए।

परीक्षित्! सर्वात्मा भगवान् में यह सम्पूर्ण जगत् देखकर सबके सब दैत्य अत्यन्त भयभीत हो गए। भगवान् वामन ने अपने एक पग से बलि की सारी पृथ्वी नाप ली, शरीर से आकाश और भुजाओं से दिशाएँ घेर लीं। दूसरे पग से उन्होंने स्वर्ग को भी नाप लिया। तीसरा पग रखने के लिए राजा बलि की तनिक सी भी कोई, वस्तु न बची। दैत्यों ने देखा कि वामनजी ने तीन पग पृथ्वी माँगने के बहाने सारी पृथ्वी ही छीन ली। यह देखकर दैत्यों ने राजा बलि की ओर से भगवान् एवं उनके पार्षदों से युद्ध करने से रोक दिया और कहा- कोई भी व्यक्ति काल पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता। जब दैव तुम्हारे अनुकूल था, तब तुमलोगों ने कई बार देवताओं पर विजय पायी पर देखो आज वे ही हम पर विजय प्राप्त कर रहे हैं। अतः समय की प्रतीक्षा करो। यदि समय हमारे अनुकूल हो जायगा तो हम ही उन्हें जीत

लेंगे।

इसके बाद सभी दैत्य अपने स्वामी की बात सुनकर रसातल में चले गए और अकेला बचा राजा बलि को देखकर भगवान् वामन ने वरुण के पाशों से बाँध दिया। जब सर्वशक्तिमान् भगवान् विष्णु ने राजा बलि को इस प्रकार बंधवा दिया तब पृथ्वी, आकाश और समस्त दिशाओं में लोग 'हाय-हाय' करने लगे। यद्यपि राजा बलि वरुण के पाशों से बंधे हुए थे, उनकी सम्पत्ति भी उनके हाथों से निकल गई थी- फिर भी उनकी बुद्धि निश्चयात्मक थी और सबलोग उनके उदार यश का गान कर रहे थे। हे परीक्षित्! उस समय भगवान् ने बलि से कहा- तुमने तीन पग भूमि को दान दिया था। दो पग में मैंने सारी त्रिलोकी नाप ली, अब तीसरा पग पूरा करो अन्यथा मैं तुम्हें नरक भेजता हूँ।''

श्रीशुकदेव जी कहते हैं- राजा परीक्षित्! इस प्रकार भगवान् ने दैत्यराज बलि का बड़ा अपमान और तिरस्कार किया। परन्तु बलि विचलित नहीं हुए और धैर्य के साथ कहा- ''हे देवताओं के आराध्य! आप निर्मल यश वाले हैं। क्या आप मेरी बात को असत्य मानते हैं? ऐसा नहीं। मैं अभी उसे सत्य कर दिखाता हूँ। आप धोखे में न पड़ेंगे। आप कृपाकर अपना तीसरा पग मेरे सर पर रख दीजिए। मुझे नरक में जाने तथा आपके पाश में बंधने का तनिक भी भय नहीं है। मुझे डर केवल अपनी अपकीर्ति से है। प्रभो! मैं उस वंश का वंशज हूँ, जिसमें भक्तराज प्रह्लाद का अवतरण हुआ था। मैं उन्हीं का पौत्र हूँ। मेरे पितामह आपके परम भक्त थे ऐसा मैं जानता हूँ। अगर आप जैसे देवाधिदेव से बांधा जाता हूँ तथा दण्डित होता हूँ तो इसके लिए मुझे कोई लज्जा और किसी प्रकार की व्यथा नहीं। व्यथा है तो केवल आपके लिए तीन पग जमीन की प्रतिज्ञा नहीं पूरा करने की। फिर भी जब तक मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं करता तब तक यह शरीर आपका है, इस पर केवल आपका अधिकार है। मैं आपकी दासता स्वीकार करता हूँ।" राजा बलि की विनम्रता भरी ऐसी वाणी सुनकर भगवान् ने कहा- "बलि! मैं तुम्हारे विचार, भाव और भक्ति पर प्रसन्न हूँ। जो व्यक्ति जन्म लेकर यदि कुलीनता, कर्म, अवस्था, रूप, विद्या, ऐश्वर्य और धन के कारण घमण्डी न हो जाय तो समझना चाहिए कि उसपर मेरी बड़ी कृपा है। तुम दानव और दैत्य दोनों वंशों में अग्रगण्य हो। मैंने तुम्हारा धन छीन लिया, राज-पद से अलग कर दिया, बाँध दिया तथा अनेक यातनाएँ दी फिर तुमने सत्यवादिता का धर्म नहीं छोड़ा। इसलिए मैं तुम्हें वह स्थान देता हूँ जो बड़े-बड़े देवताओं को बड़ी, कठिनाई से प्राप्त होता है। सावर्णि मन्वन्तर में तुम मेरे परमभक्त इन्द्र होगे। तब तक विश्वकर्मा द्वारा रचित सुतल लोक में तुम वास करोगे। तुम्हें स्वर्ग से भी सुखद अनुभूति सुतल लोक में होगी।

श्रीमद्भागवत के अनुसार राजा बलि और भगवान् वामन के कथा-प्रसंग को सुनने वाले और सुनाने वाले को अक्ष्य पुण्य की प्राप्ति होती है तथा वे सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं।

ग्राम+पो.- सामस
गया- बरबीघा
जिला- शेखपुरा

5 8 5

भक्त कवि नरोत्तम दास

▶*युगल किशोर प्रसाद*

कोई भी रचना पहले भाषिक-संरचना है, उसके बाद ही कुछ और। भाषा व्यक्तित्व की पहचान है, तभी तो किसी अँगरेज चिन्तक ने कहा है- 'Style is the man' (स्टाइल इज दी मैन)। रचना भी रचनाकार के व्यक्तित्व की पहचान बनती है। इसी कारण सूर और तुलसी की पहचान भक्त कवि के रूप में बनी। उनकी लोकप्रियता का एक उल्लेखनीय कारण उनके द्वारा प्रयुक्त जनभाषा- लोकभाषा ही है। संस्कृत-भाषा में रचित कृतियों की तुलना में लोकभाषा में रचित कृतियाँ इसी कारण अधिक लोकप्रिय हुईं। संस्कृत-भाषा में रचित वाल्मीकीय रामायण की तुलना में रामचरितमानस एवं सूर की पदावलियों के अधिक लोकप्रिय होने का कारण निश्चित रूप से जनभाषा एवं जनभावना का प्रयोग ही है। खासकर लोकभाषा में चित्रित भक्ति-भावना सामान्य जनों के मन में आसानी से घर कर जाती है।

भक्ति आस्था-विश्वास, श्रद्धा और अटल निष्ठा का प्रतिफल है। यह अपने इष्ट के प्रति, अपने स्वामी के प्रति पूर्ण समर्पण है। भक्ति में भक्त का अपना व्यक्तित्व तिरोहित हो भक्ति के आलम्बन आराध्य में विलीन हो जाता है, जैसे समुद्र में मिल जाने के बाद नद-नदियों का अस्तित्व समुद्र में विलीन हो जाता है। साधक और आराधक एकाकार हो जाते हैं। सीमित का असीम में, भक्त का भगवान् में विलयन भक्ति का साध्य है। यह मानसिक धरातल पर घटित होता है। भक्त की काया भी एक दिन निश्शेष हो जाती है, केवल साधक की स्मृति रह जाती है, जो अन्ततोगत्वा काल के थपेड़ों में लुप्त हो जाती है। भक्त ने श्रद्धालुओं के बीच जो कुछ कहा, उसकी स्मृति भले ही कुछ समय तक श्रद्धालुओं के चित्त में बनी रहती है। किन्तु कोई भक्त अगर कवि हुआ तो भाषा के माध्यम से आराध्य को आलम्बन बनाकर काव्य-रचना करता है और उसकी वह कृति युग-युगान्तरों तक भक्ति का मार्ग प्रशस्त करती चलती है। सूर और तुलसी ने अपने-अपने आराध्य की भक्ति में विपुल काव्य की रचना की ओर वे अपनी रचनाओं में आज भी जीवित हैं। उनकी पहचान अमिट है जो सदा कायम रहनेवाली है।

विशिष्ट भक्त कवि नरोत्तमदास का जन्म उत्तरप्रदेश के सीतापुर जिला के बारी ग्राम में १६वीं शती में हुआ था। 'शिवसिंह-सरोज' में उनसे सम्बद्ध वर्ष १५४५ ई० का उल्लेख हुआ है, जो जन्मवर्ष है या निधन-वर्ष यह स्पष्ट नहीं है। इनकी तीन रचनाएँ मानी जाती हैं- सुदामा चरित, ध्रुवचरित एवं विचार माला। दुर्भाग्यवश इनमें से केवल प्रथम रचना ही उपलब्ध है।

'सुदामा चरित' एक खण्ड काव्य है जिसमें कवि ने 'श्रीमद्भागवत' के कृष्ण-सुदामा प्रसंग को भाव-प्रवणता के साथ चित्रित किया है। कवि ने छोटी-सी घटना को आधार बनाकर भक्ति के सख्य भाव का जो दार्शनिक रूप प्रस्तुत किया है वह हिन्दी के भक्ति साहित्य में उत्कृष्ट है। इसी 'सुदामा-चरित' के कतिपय पक्षों को यहाँ उजागर किया गया है।

निस्सन्देह सूर और तुलसी सबसे बड़े भक्त कवि हैं और उनका रचना-फलक भी सागर की तरह विस्तृत है। किन्तु भक्ति-काव्य एवं भक्त कवियों की परम्परा में सूर, तुलसी और मीरा की तरह एक दूसरे कवि भी हुए हैं, और जिनकी मात्र एक रचना उपलब्ध है। वे हैं श्रीकृष्ण-भक्त कवि श्री नरोत्तमदास और उनकी अमर, कालजयी कृति है- 'सुदामा चरित'। अगर सूर और तुलसी भक्ति काव्य-गगन के सूर्य चन्द्र है, तो नरोत्तमदास अटल ध्रुवतारा जिसकी चमक कभी मलिन पड़नेवाली नहीं। वे 'नरों में उत्तम' होने के साथ-साथ 'भक्त-कवियों में भी 'उत्तम' हैं।

यह निर्विवाद है कि सूर और तुलसी सगुण भक्ति के अन्तर्गत 'कृष्ण और राम भक्तिशाखा' के अन्यतम कवि हैं, किन्तु मात्र एक कृति प्रस्तुत करनेवाले नरोत्तमदासजी का भक्ति-काव्य और भक्त-कवि की दृष्टि से कमतर महत्त्व नहीं है। उनके द्वारा रचित 'सुदामा-चरित' भी श्रद्धालुओं के बीच कमोवेश उतना ही लोकप्रिय हैं, जितना सूर की पदावलियों और मीरा के पद। उसकी लोकप्रियता का कारण भी भक्त-कवि का सरल भाषा-प्रयोग है जो बड़ा प्रभावोत्पादक और भक्ति-रस में लीन करनेवाला है। 'सुदामा चरित' का वर्णन-फलक हालाँकि छोटा है किन्तु जो चरित चित्रित हुए हैं, उनमें रचना कौशल के कारण सजीवता आ गयी है। वर्णित चरित किसी भी दृष्टि से निष्प्राण कठपुतले नहीं हैं, चाहे पुरुष-पात्र हों या नारी-पात्र, आराधक हो या आराध्य, सब प्राणवन्त नजर आते हैं। इस लघुकाय कृति में घोर गरीबी और अतुल अमीरी का प्रभावोत्पादक चित्र अंकित हुआ है और इसी कारण रचना में विशेष प्रभावोत्पादकता भी आ पायी है। सुदामा अपनी पत्नी सहित घोर गरीबी के उदाहरण हैं तो श्रीकृष्ण और रूक्मिणी अतुल सम्पदा के प्रतिनिधि। गरीबी और अमीरी का एक साथ ऐसा चित्र अन्यत्र दुर्लभ है। जमीन-आसमान का फर्क है दोनों चरित्रों की आर्थिक स्थिति में, किन्तु दोनों के चरित्र उदात्त हैं और महत्ता में एक दूसरे के बराबर इस कृति में अमीरी द्वारा गरीबी पर सब कुछ न्योछावर कर देने का चित्रित हुआ है। उधर गरीबी के मूर्तमान रूप सुदामा में स्वाभिमान-आत्मसम्मान का भाव है और वे गरीबी में भी अपने धर्म- 'बाँभन को धन केवल भिच्छा' पर अटल हैं। अपने मित्र से भी कुछ माँगना उनकी दृष्टि में अनुचित है। उधर उनकी पत्नी मित्र से कुछ माँगने को उचित मानती है। दोनों के बीच संवाद-योजना से इस लघु कृति में नाटकीयता आ गई है, नाटक के तत्त्वों का समावेश हो गया है, जिससे कृति में चार चाँद लग गये हैं। दूसरी ओर श्रीकृष्ण का परम उदात्त चरित्र है, जिनके लिए समस्त सांसारिक वैभव मित्रता के समक्ष तुच्छ जान पड़ता है। सुदामा अगर अपरिग्रही भक्त हैं तो कृष्ण द्वारिकाधीश होते हुए भी परम त्यागी और मित्र को सर्वस्व अर्पण हेतु उद्यत तत्पर। इसी बिन्दु पर सुदामा और श्रीकृष्ण समान धरातल पर प्रतिष्ठित हो जाते हैं, एक सांसारिकता के वैराग्य के कारण तो दूसरा भक्त मित्र को सर्वस्व अर्पण की भावना के कारण। अपरिग्रह और त्याग वस्तुतः एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों के लिए सांसारिक वैभव तुच्छ और त्याज्य हैं चरित-चित्रण का यह कौशल रचना के उद्देश्य-प्रकाशन हेतु जरूरी था।

यहाँ कृति का स्रोत भी विचारणीय है। सुदामा ब्राह्मण की कथा श्रीमद्भागवद में आयी है। सुदामा ब्राह्मण वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में ब्राह्मणों की गरीबी के प्रतीक हैं। श्रीकृष्ण सुदामा के सहपाठी रह चुके हैं। बचपन की यह मित्रता जीवन-पर्यन्त कायम रहती है। सज्जनों की मित्रता ऐसी ही होती है। एक मित्र अभावग्रस्त हो और दूसरा सम्पन्न, तो ऐसी मित्रता अभाव का भाव में, गरीबी को अमीरी में बदल देती है। विश्व-व य में कृष्ण-सुदामा की मैत्री बेमिसाल और अद्वितीय है। वर्णित प्रसंग मित्रता का उच्चतम आदर्श प्रस्तुत करता है।

सहपाठी मित्र की ऐसी ही एक कथा महाभारत में वर्णित है। और वह है द्रोण और द्रुपद की कथा। द्रोण गरीब ब्राह्मण के प्रतीक हैं तो द्रुपद संपन्न पांचाल-प्रदेश का अधिपति। किन्तु दोनों की मैत्री कृष्ण-सुदामा की

मित्रता से सर्वथा भिन्न और अलग कोटि की है। गरीब द्रोण को अपने सहपाठी मित्र राजा द्रुपद के हाथों अपमानित होना पड़ता है। दोनों कथाओं के निष्कर्ष में वस्तुतः कोई संबन्ध नहीं है, किन्तु कृष्ण-सुदामा की मित्रता के उच्चादर्श को अच्छी तरह समझने के लिए महाभारत वाली कथा की पृष्ठभूमि आवश्यक प्रतीत होती है। इस प्रसंग को सामने रखने से भक्त कवि नरोत्तमदास द्वारा प्रस्तुत कृष्ण-सुदामा की अटल मैत्री और उच्चादर्श और अधिक स्पष्ट हो पाता है। इसी कारण कृष्ण और सुदामा मित्रता के आदर्श उदाहरण बनकर लोक-प्रशंसा के पात्र बन जाते हैं और राजा द्रुपद निन्दा का पात्र। द्रोण भी स्वाभिमानी हैं, उन्हें भी दान लेना स्वीकार नहीं। इस प्रकार सुदामा और द्रोण, इस बिन्दु पर एक अर्थात् समान धरातल पर प्रतिष्ठित नजर आते हैं, और दूसरी ओर श्रीकृष्ण और द्रुपद एक दूसरे के विपरीत व्यवहार वाले सिद्ध होते हैं। चरित का यह वैषम्य (Contrast) भी श्रीकृष्ण के चरित्र को भलीभाँति समझने में सहायक बनता है।

नरोत्तमदासजी की कीर्त्ति का आधार मात्र 'सुदामा चरित' है। पारम्परिक खण्ड-काव्य से भिन्न यह रचना सर्ग-निबद्ध नहीं है, किन्तु कथा की निरन्तरता और अलग-अलग प्रसंगों की योजना के कारण इस रचना में खण्ड-काव्य के गुण आ गए हैं। मुक्तक से भिन्न यह एक जीवन-खण्ड को प्रस्तुत करते वाली ललित और सरस भक्ति परक रचना है, जिसमें भक्त और भगवान की कथा अन्तर्ग्रथित है। भक्त के रूप में चित्रित हैं सुदामा और उनकी पत्नी और भगवान के रूप में चित्रित हैं श्रीकृष्ण। भक्त-कवि का अभिप्रेत भक्त और भगवान के बीच संबन्ध से अधिक दो मित्रों की मैत्री को उद्घाटित करना है। सुदामा भले ही भक्त के रूप में चित्रित हुए हैं किन्तु भगवान् का चरित्र मित्र के रूप में ही चित्रित हुआ है। भक्त सुदामा की पत्नी के लिए श्रीकृष्ण भगवान है, जिसकी अभिव्यक्ति उद्धृत नीचे की पंक्तियों में हो पाई है-

दीनदयाल से द्वार न जात सो,
औरन द्वार पै दीन खै बोले।
श्री जदुनाथ से जाके हितू सो
तिहूँपन क्यों कन मांगत डोले।।

यहाँ अकाट्य युक्तिसंगत तर्क भी है, और 'जदुनाथ' की दयालुता और भगवत्ता पर अटल विश्वास भी, और सुदामा-पत्नी के इसी तर्क के आगे पति सुदामा को झुकना पड़ता है। सुदामा अगर अपरिग्रही और अपनी दशा पर संतुष्ट रहनेवाले वैरागी हैं तो सुदामा-पत्नी भी कबीर की तरह संतोष वृत्ति वाली है। कबीर भी 'साँईं' से मांगने में नहीं हिचकते और सुदामा-पत्नी में साम्य है, किन्तु कृति में चित्रित पात्र सुदामा और सुदामा-पत्नी के दृष्टिकोण में वैषम्य। कबीर के विपरीत, सुदामा आराध्य से कुछ माँगने के पक्ष में नहीं हैं। सुदामाजी का स्पष्ट कथन है-

बिप्रन के पन है जू यही
सुख-सम्पति को कछु काज नहीं।

कबीर जहाँ, 'साईं इतना दीजिए जा में कुटुम समाय। मैं भी भूखा न रहूँ साधु न भूखा जाय,' के आग्रही हैं, ठीक उसी तरह सुदामा-पत्नी भी पेट की भूख मिटाने के लिए 'जदुनाथ' से मांगने की बात कहती है-

'कोदों सवाँ जुरतो भरि पेट
तो चाहति न दधि दूध मिठौना।'

इस खण्ड काव्य में तीन प्रसंग वर्णित हैं।

(क) सुदामा-दंपति की गरीबी,

(ख) सुदामा के द्वारका पहुँचने पर 'जदुनाथ' द्वारा स्वागत, तथा

(ग) सुदामा को श्रीकृष्ण द्वारा प्राप्त वैभव,

सुदामा-दम्पति की गरीबी का प्रसंग बड़ा ही कारुणिक है। दूसरे प्रसंग में, मुख्य रूप से, कृष्ण के वैभव का चित्रण है।

'भौन भरो पकवान मिठाइन,
लोग कहैं निधि है सुखना है।'

प्रथम एवं द्वितीय का यह वैषम्य दो भिन्न जीवन-स्थितियों का चित्र तो प्रस्तुत करता ही है, कथा इसी कारण प्राणवन्त हो जाती है। दोनों विपरीत स्थितियाँ एक दूसरे का पोषक ही नहीं, रचना के उद्‌भावित प्रसंगों को औचित्य भी प्रदान करती हैं। एक ओर श्रीकृष्ण की समृद्ध दशा का चित्रण है तो पहले प्रसंग में सुदामा की गरीबी का यथार्थ चित्रण है-

'धोती फटी सी लटी दुपटी
अरु पायें उपानु की नहिं सामा।'

तीसरे प्रसंग में-

'सम्पत्ति सुदामा जू को कहाँ लौ दई है प्रभु
कहाँ लौं गिनाऊँ जहाँ कंचन को महल हैं।'

इस प्रकार तीनों प्रसंग सूत्रबद्ध हैं। भक्त को भक्ति का फल अपार सुख-सम्पदा के रूप में मिलता है। भक्त को, जरूरतों से बहुत अधिक मिल जाना, प्रभु के ऐश्वर्य का द्योतक है। भक्त का अपने आराध्य के प्रति अटल निष्ठा, विश्वास-इस कृति का उपजीव्य है।

उक्त वर्णित प्रसंगों में गार्हस्थ्य-जीवन की झाँकी भी मिलती है। सुदामा गरीबी में भी सुखी और संतुष्ट हैं। सुदामा-पत्नी भी सन्तोषी हैं; किन्तु स्थिति जब असह्य हो जाती है, तभी वह पति सुदामा को 'जदुनाथ' के पास जाने को प्रेरित करती है। सुदामा पत्नी की बात मान जाते हैं। यह प्रसंग इस ओर भी संकेत करता है कि गार्हस्थ्य-जीवन की सफलता हेतु पति का पत्नी की नेक सलाह मानना कितना आवश्यक है। उधर श्रीकृष्ण दम्पति में भी आपसी सामंजस्य है, तभी तो रुक्मिणी के कहने पर मित्र का तण्डुल दो ही बार फाँक कर रुक जाते हैं। वहाँ भी सुखी दाम्पत्य-जीवन के कारण का संकेत है। दम्पति चाहे गरीब हों या अमीर, दोनों हालतों में पति-पत्नी द्वारा एक दूसरे की नेक सलाह मानना ही सुखी जीवन का हेतु बनता है।

इसके अलावा, कृति में भगवान की दयालुता पर भी प्रकाश पड़ा है। नरोत्तमदास भक्त कवि हैं, इसलिए ऐसा चित्रण आवश्यक भी था। कथानक में कई कारुणिक प्रसंग हैं, जैसे-

देखि सुदामा की दीन दशा
करुणा करके करुणाकर रोए।
पानी परात को हाथ छुओ
नहीं, नैनन के जल सो पग धोए।

यहाँ सुदामा की दीन दशा के साथ-साथ श्रीकृष्ण की भक्तवत्सलता (मित्र वत्सलता) भी स्पष्टता से चित्रित है।

'सुदामा-चरित' एक उत्कृष्ट कथा-काव्य है। इस लघुकाय काव्य-ग्रन्थ में दोहा, सवैया, कुण्डलियाँ, कवित्त जैसे अनेक प्रकार के छन्द कथ्य की प्रस्तुति के लिए प्रयुक्त हुए हैं। विषयवस्तु के अनुकूल दोहों के उदाहरण द्रष्टव्य हैं। प्रयुक्त अलग-अलग छन्द कथ्य के वाहक और कृति को अर्थवान् बनाते हैं। अलग-अलग छन्दों में भक्तिभाव की ही योजना और व्यंजना हुई है। छन्दों की छटा इन्द्रधनुष के रंगों की भाँति रमणीय और आह्लादक हैं। इस अनुपम कृति का शुभारम्भ दोहा छन्द से करते हुए भक्त कवि ने भक्ति की महिमा को ही प्रकाशित किया है। गोस्वामीजी की तरह भक्त कवि नरोत्तम दासजी ने अपने काव्य-ग्रंथ का शुभारंभ 'गणेश-वंदना' से किया है-

श्री गनेश सुमिरन करूँ, उपजै बुद्धि-प्रकाश ।
सो चरित्र बरनन करूँ, जासों दारिद नास।।१।।

विघ्नहर विनायक-वंदना की परम्परा रही है। गोस्वामीजी ने अपने सद्‌ग्रन्थ 'रामचरितमानस' का प्रारम्भ भी 'गणेश-वंदना' से ही किया है-

'वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मंगलानां च कर्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ।।१।।

रा०च०मा०

पुनः सोरठा छन्द में-

'जो सुमिरत सिधि होई गन नायक करिवरवदन।
करहु अनुग्रह सोई बुद्धि रासि सुभ गुन सदन।

सिद्धिदायक विनायक की वंदना की गई है।

कृस्न-मित्र कई जन्म को ताको वरनन कीन्ह'।
सुख-सम्पति माया मिलै, सो उपदेश जु दीन्ह।।३।।

(सु०च०)

विवेच्य कृति का तीसरा दोहा भक्त कवि के प्रतिपाद्य की ओर संकेत करता है।

'बिप्र सुदामा बसत हैं, सदा आपने धाम।
भिक्षा माँगि भोजन करैं, हिये जपैं हरिनाम।।४।।
(सु०च०)

ताकी धरनी पतिव्रता, गहे वेद की रीति।
सलज सुसील, सुबुद्धि अति, पति सेवा में प्रीति।।५।।
(सु०च०)

उदाहृत चौथे और पाँचवें दोहे में सुदामा दम्पति का चरित-चित्रण किस कुशलता से कवि प्रस्तुत कर सके हैं, सुधी पाठक स्वयं ही देख लें।

उदाहृत छठे दोहे से कथा शुरू होती है,

कही सुदामा एक दिन, कृष्न हमारे मित्र।
करत रहति उपदेश तिय, ऐसो परम विचित्र।।
महादानि जिनके हितू, हैं हरि, जदुकुल-चंद।
ते दारिद-सन्ताप ते, रहै न क्यों निरदुन्द।।७।।
(सु०च०)

कह्यो सुदामा, बाम सुनु, बृथा और सब भोग।
सत्य भजन भगवान को, धर्म-सहित-जप-योग।।

भक्त की अटल निष्ठा और दृढ़ विश्वास का द्योतन करनेवाले दोहे हैं।

निम्नांकित धनाक्षरी छन्द में सुदामाजी के आराध्य श्रीकृष्ण का शब्द-चित्र प्रस्तुत हुआ है-

लोचन-कमल, दुख मोचन तिलक भाल,
स्रवननि कुण्डल, मुकुट धरे माथ हैं,
ओढ़े पीत-बसन गरे मैं बैजयन्ती माल,
संख-चक्र-गदा और पद्म धरे हाथ हैं।

आराध्य का विष्णु होना प्रतिपादित है। उक्त छन्द की अगली कड़ी

तुमही कहत, हम पढ़े एक साथ है।

तथा

द्वारिका के गए हरिं दारिद हरैंगे, प्रिय,
द्वारिका के नाथ, वे अनाथन के नाम हैं।।

सुदामा-पत्नी का पति के प्रति कथन है। प्रथम चार पंक्तियों में प्रस्तुत रूप विधान का सुन्दर विन्यास कवि द्वारा हुआ है।

उसी तरह कथ्य को आगे बढ़ानेवाले कवित्र एवं सवैया छंदों का कुशल प्रयोग कृतिकार द्वारा किया गया है। कुछ उदाहरण पर्याप्त होंगें-

सिच्छुक हौं सिगरे जग को तिय।
ताको कहा अब देति है सिच्छा
जे तप कै परलोक सुधारत,
सम्पति की तिनके नहिं इच्छा
मेरे हिय हरि पद-पंकज,
बार हजार लै देखु परिच्छा
औरन को धन चाहिए,
बावरि बाँभन के धन केवल भिच्छा।

यहाँ सुदामाजी का स्वाभिमान तो मुखरित हुआ ही है, **'मेरे हिय हरि पद-पंकज'** से उनकी आराध्य श्रीकृष्ण के प्रति अटल भक्ति भी उजागर हुई है।

लोचन पूरि रहे जल सों,
प्रभु दूरि ते देखत ही दुख मेट्यो

तथा

सोच भयो सुरनायक के कलपद्रम
के हिय माझ खखेट्यो
कम्प कुबेर हिये सरस्यो,
परसे पग जात सुमेरु ससट्यो
रंक तो राउ भयो जब हीं,
भरि अंक रमापित भेट्यो।।

छन्द में श्रीकृष्ण की भाव-दशा, इन्द्र, कुबेर और सुमेरु पर्वत की मनोदशा चित्रित कर कवि ने अपनी कवि-सामर्थ्य का परिचय दिया है।

स्पष्ट है कि नरोत्तमदासजी रस-सिद्ध कवि ही नहीं, वाणी-समर्थ भक्त कवि भी हैं जिन्हें भाषा पर पूर्णाधिकार है। भाषा उनके भावों की चेरी ही नहीं, कवि की अनुगता भी है। इस अनुपम काव्य-कृति में कवि ने तत्सम और देशज शब्दों के प्रयोग द्वारा वर्णन-चमत्कार उपस्थित कर दिया है। भावानुरूप भाषा का प्रयोग इस कृति को साहित्यिक दृष्टि से महान बनता है। भक्ति-काव्य के रूप में इस कृति का महत्त्व तो आजतक अक्षुण्ण है ही।

रचना रचनाकार के व्यक्तित्व की शाब्दिक अभिव्यक्ति है। नरोत्तमदासजी सिद्ध भक्त कवि हैं, इसलिए उनका भक्त-रूप इस कृति में पूरे ओज और तेज के साथ प्रकट हुआ है। प्रबन्ध-पटु महाकवि गोस्वामीजी की तरह छन्दों के सही और भावानुकूल प्रयोग के कारण नरोत्तमदासजी उनकी तरह ही एक कुशल प्रबन्ध कवि हैं। यह लघुकाय कृति नाविक के तीर ही तरह प्रभावोत्पादक और भक्ति-रस से परिपूर्ण है। साथ ही, प्रस्तुत भक्ति-काव्य 'गागर में सागर' क्या, 'सीपी में समुद्र' के अवतरण का अकेला और एकमात्र उदाहरण है।

'सुदामा चरित' के रूप में अपनी काव्य-प्रस्तुति से नरोत्तमदासजी न केवल एक भक्त कवि, अपितु काव्य-कला की की दृष्टि से वे एक भाषा समर्थ श्रेष्ठ कवि भी सिद्ध होते हैं। भारतीय भक्ति-वल्लरी के विकास के आधार 'भानुकुल-कमल-दिवाकर' (राम) तथा 'वृष्णिकुल कुमुद-राकेश' (कृष्ण) समान रूप से रहे हैं। नरोत्तमदासजी की कृति में भक्ति और मैत्री भावों का विम्बन बड़ी कुशलता से हुआ है। 'रामचरितमानस' के रचयिता गोस्वामी की तरह नरोत्तमदासजी ने अपने लघु प्रबन्ध 'सुदामा चरित' में नायक के व्यक्तित्व, बुद्धिवैभव और चारित्र्य से भक्ति, मैत्री जैसे दुर्लभ फलों की सिद्धि सम्पन्न की है और अपनी विलक्षण कवि प्रतिभा का परिचय दिया है। वाणी के वरदपुत्र की भक्ति-भावना तन्मय और भाव-विभोर करती है। उनकी पावन स्मृति को सादर नमन।

न्यू विग्रहपुर, बिहारी पथ
पटना-१

5 8 5

अखण्डित राम-सेतु के साक्ष्य

भगवान् श्रीराम ने स्वयं रामसेतु को लंका से लौटते समय तोड़ा था वह भ्रामक एवं निराधार है। वाल्मीकि रामायण में सेतु निर्माण का विस्तृत विवरण है कि कैसे पाँच दिनों में सौ योजन का पुल समुद्र पर बनाया गया। इतना ही नहीं, लंका से पुष्पक विमान से लौटते समय भगवान् श्रीराम ने सीताजी को यह पुल दिखलाया भी था –

एष सेतुर्मया बद्धः सागरे लवणार्णवे। तव हेतोर्विशालाक्षि नलसेतुः सुदुष्करः।। (वा0-रा0 : युद्धकाण्ड : 123।16)

अर्थात् हे सीते! इस खारे पानी के समुद्र पर आपके लिए यह नल-निर्मित सेतु मेरे द्वारा बँधवाया गया।

वाल्मीकि-रामायण के विभिन्न पाठों में इसके अतिरिक्त कुछ अन्य श्लोक भी मिलते हैं, जो सेतु की महत्ता प्रतिपादित करते हैं। काश्मीर, बंगाल, मिथिला तथा पश्चिमी भारत के पाठों में ये श्लोक अधिक हैं –

यावत्स्थास्यन्ति गिरयो यावत्स्थास्यन्ति सागराः। तावत्सेतुरयं स्थाता यावच्च पृथिवी ध्रुवम्।।
नलेन विहितः सेतुस्त्वदर्थं वै समाहितः। एष देवमनुष्येषु कथाभूतो भविष्यति।।

अध्यात्म-रामायण में भी जब पुष्पक विमान द्वारा श्रीराम लंका से लौटते हैं तब सीताजी को अपना बनाया हुआ पुल दिखाते हुए कहते हैं –

एतच्च दृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः। सेतुबन्धमिति ख्यातं त्रैलोक्येन च पूजितम्।। (युद्धकाण्ड : 14। 5)

अर्थात् इस विशाल सागर पर निर्मित सेतुबन्ध नाम से विख्यात यह तीर्थ तीनों लोकों के द्वारा पूजित है।

इसी प्रकार 'रघुवंश' में कालिदास ने भी तेरहवें सर्ग में वर्णन किया है कि पुष्पक विमान से लौटते समय श्रीराम सीता को उस सेतु का दर्शन कराते हुए कहते हैं –

वैदेहि पश्यामलयाद्विभक्तं मत्सेतुना फेनिलमम्बुराशिम्।
छायापथेनैव शरत्प्रसन्नमाकाशमाविष्कृतचारुतारम्।।2।।

अर्थात् हे सीते! इस समुद्र को देखो जो मेरे बनाये हुए पुल से मलय पर्वत तक यह इस प्रकार दो भागों में बँटा हुआ दिखाई पड़ रहा है जैसे सुन्दर तारों से भरा शरत् काल का आकाश आकाशगंगा द्वारा दो भागों में बँटा हुआ दिखाई पड़ता है।

संस्कृत-साहित्य में बाल-हितैषणा के तत्त्व

▶ *साहित्यवाचस्पति डॉ० श्रीरंजन सूरिदेव*

शास्त्र में प्रत्येक मनुष्य की चार अवस्थाएँ मानी गई हैं- बाल्य, यौवन, प्रौढ और वृद्ध। 'बाल्य' शब्द सामान्यतः शिशु, कुमार और नवयुवक इन तीनों के लिए प्रयुक्त है। बाल्य जिसका सुधर गया, समझ लीजिए कि वह अपनी शेष अवस्थाओं को भी निश्चय ही सुधार लेगा। पहली अवस्था विद्यार्जन की है, तो दूसरी अवस्था धनार्जन की। तीसरी अवस्था तपःसाधना की है, तौ चौथी अवस्था मृत्यु-महोत्सव मनाने की। यानी, जो अपनी तीन अवस्थाओं के विहित कामों को पूरा कर लेता है, वही सुखपूर्वक मरने का सौभाग्य प्राप्त कर सकता है। और फिर, जिसकी प्रारम्भ की तीन अवस्थाएँ निष्कर्म रहीं, उनकी चौथी अवस्था, अर्थात् वृद्धावस्था के दुर्गंजन (दुर्दशा) का क्या कहना? इसी पर सुभाषितकार कहते हैं-

प्रथमे नार्जिता विद्या द्वितीये नार्जितं धनम्।
तृतीये न तपस्तप्तं चतुर्थे किं करिष्यति।।

उपर्युक्त विवेचन के प्रकाश में यह तथ्य निकलता है कि मनुष्य-जीवन में बचपन का बड़ा महत्त्व है। मनुष्य में सबसे मूल्यवान् अवस्था बचपन ही है। बचपन के अनुसार ही किसी के पूरे आगामी जीवन के प्रति अच्छी या बुरी धारणा स्थित की जाती है- 'होनहार बिरवार के होत चीकने पात।' बचपन में जैसा संस्कार बन जाता है, वैसा ही संस्कार आजीवन बना रहता है। ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार मिट्टी के कच्चे बरतनों में पड़े हुए चिह्न उसके पक जाने पर भी यथावत् बने रहते हैं-

'यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत्।

(हितोपदेश)

शैशव, कौमार्य या कैशौर्य और नवयौवन इन तीनों उम्र के बालक कोमलमति होते हैं। इनके निष्कलुष-निश्छल हृदय पर संसर्गज दोष-गुणों की छाप जल्दी पड़ती है और जो छाप एक बार पड़ जाती है, वह आजीवन अमिट हो जाती है। इसलिए माता-पिता या अभिभावक प्रारम्भ से ही अपने बच्चों को अच्छे और शिक्षाप्रद वातावरण में रखने के पक्षपाती होते हैं। चूँकि बच्चे राष्ट्रोद्यान के आशा-कुसुम होते हैं, इसलिए न

प्रथमेनार्जिता विद्या द्वितीयेनार्जितं धनम्। तृतीयेन तपस्तप्तं चतुर्थे किं करिष्यसि।। कहा गया है कि प्रथम अवस्था अर्थात् बाल्यावस्था में यदि विद्या अर्जित की जाये, दूसरी युवावस्था में धन-संग्रह किया जाये, तीसरी प्रौढावस्था में तपश्चरण किया जाये तो वृद्धावस्था में कुछ भी करने के लिए शेष नहीं रह जाता है। अतः संस्कृत साहित्य में पुरुषार्थ-चतुष्टय की प्राप्ति के लिए चिन्तन प्रस्तुत हुआ है। इसलिए इसमें एक ओर शृङ्गार-वर्णन है तो दूसरी ओर धर्मोपदेश है। यह संस्कृत साहित्य की विशेषता है कि इसका विशाल साहित्य पूजा-गृह से केलि-गृह तक तथा विद्यालय से समरालय तक व्यापक है। अतः स्वाभाविक रूप से इसमें बालकों के बौद्धिक विकास और इनकी शिक्षा दीक्षा के लिए सम्यक् चिन्तन प्रस्तुत किया गया है। इस चिन्तन का आकलन कर रहे हैं डॉ० श्रीरंजन सूरिदेव।

केवल न उनके माता-पिता या अभिभावक, अपितु स्वयं राष्ट्रीय सरकार भी बाल-कल्याण या बाल-हितैषणा के विविध उपायों में सदा संलग्न और नित्य तत्पर रहती है। बालकों की शिक्षा, स्वास्थ्य और चरित्र इन तीनों के ठीक रहने से ही वे अपने आगामी जीवन में समाज और राष्ट्र की स्थिति को ठीक रख सकेंगे। इसलिए, शिक्षाशास्त्रियों या बाल-साहित्यकारों का ध्यान शिक्षा-पद्धति का निर्माण करते समय या बाल-साहित्य की सर्जना करते समय विषय को बालबोध बनाने की ओर सदा उद्ग्रीव रहता है।

प्रसिद्ध नैयायिक अन्नम्भट्ट जब बच्चों के लिए न्याय जैसे ग्रह-ग्रन्थिल विषय की पुस्तक 'तर्कसंग्रह' लिखने बैठे, तब उन्होंने उसकी भाषा-शैली की सरलता पर ध्यान रखा था। मंगलाचरण में उन्होंने लिखा है- **'बालानां सुखबोधाय क्रियते तर्कसङ्ग्रहः।'** अर्थात्, बच्चों के सुखपूर्वक बोध के लिए मैं 'तर्कसंग्रह' की रचना कर रहा हूँ। प्रसिद्ध वैयाकरण अनुभूति-स्वरूपाचार्य जब बालोपयोगी व्याकरण- 'सारस्वतप्रक्रिया' लिखने लगे, तब उन्होंने भी उसकी शैली की सरलता या ऋजुता पर बराबर ध्यान रखा था- **'सारस्वतीमृजुं कुर्वे प्रक्रियां नातिविस्तराम्।'** अर्थात्, अतिविस्तार से रहित सरल 'सारस्वतप्रक्रिया' की रचना मैं कर रहा हूँ। इसी प्रकार 'अमरकोष' जैसे प्रसिद्ध कोष के रचयिता श्रीअमरसिंह ने बालकों के लिए अपने इस कोष का निर्माण करते समय उसकी संक्षिप्तता में ही सम्पूर्णता का समावेश किया। लिखा है-

संक्षिप्तैः प्रतिसंस्कृतैः।
सम्पूर्णमुच्यते वर्गैर्नामलिङ्गानुशासनम्।

अर्थात्, यह सम्पूर्ण संक्षिप्त है, प्रतिशोधित है, वर्गों में विभाजित है (जैसे स्वर्गवर्ग, नरकवर्ग, मनुष्यवर्ग आदि) और शब्दों का लिंग-निर्देश व्याकरण के अनुसार किया गया है।

इस प्रकार, संस्कृत के एक नहीं, अनेक नैयायिकों, वैयाकरणों और कोषकारों ने बालकों की शिक्षा के लिए कठिन से कठिनतर विषयों का भी सरलीकरण प्रस्तुत कर उनके (बालकों के) कल्याण-सम्पादन का महनीय कार्य किया है।

संस्कृत के प्रसिद्ध बाल-कथाकार विष्णुशर्मा ने तो 'पंचतन्त्र' लिखकर कहानी के बहाने बच्चों को गम्भीर नीति सिखाने का अभूतपूर्व और अद्भुत प्रयास किया है। नारायण पण्डित ने 'पंचतन्त्र' का ही 'हितोपदेश' के नाम से प्रतिसंस्करण तैयार किया है और उसमें उपर्युक्त मन्तव्य का आकलन किया है- **'कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते।'** इन पंक्तियों के लेखक का भी दावा है कि जो बालक 'हितोपदेश' या 'पंचतन्त्र' को हृदयंगम कर लेगा, वह भारतीय नीति के विकास का पारदृश्वा (पारगामी) अवश्य ही बन जायगा। बाल-हितैषणा की दृष्टि से ये दोनों नीतिग्रन्थ निश्चय ही संस्कृत-साहित्य की ओर से राष्ट्र को बहुमूल्य दिव्य अवदान हैं। सामान्य व्यवहार-नीति और राजनयिक कूटनीति इन दोनों नीतियों के अध्ययन में ये दोनों ग्रन्थ-रत्न बहुत आधिकारिक सहायक सिद्ध हुए हैं, इसमें सन्देह नहीं।

यह अविदित नहीं कि कहानियों का प्रभाव बच्चों पर बहुत अधिक पड़ता है। बच्चे प्रारम्भ से ही, जब वे रोते या हठ कर बैठते हैं, बुढ़िया दादी से विभिन्न कहानियाँ सुनकर प्रबोधन पाते आ रहे हैं और इस प्रकार उनका अभ्यास ही कहानी सुनने का हुआ करता है। कहानी के माध्यम से ही वे ज्ञान-विज्ञान की बातों को जल्दी जान लेते हैं। बच्चों की इस मनोविज्ञान की पकड़ में कथाकार विष्णुशर्मा बड़े ही निपुण थे। इसलिए उन्होंने उन्मार्गगामी राजपुत्रों को छह महीने के भीतर ही नीतिशास्त्रज्ञ बनाने का बीड़ा उठाया था। उन्मार्गी राजपुत्रों की नीतिशिक्षा का प्रारम्भ ही विष्णुशर्मा ने मूर्ख और विज्ञों की परिभाषा के साथ किया था-

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा।।

अर्थात्, बुद्धिमान् वे हैं, जो काव्य और शास्त्र से मन बहलाते हुए समय बिताते हैं और मूर्ख तो वे हैं, जो या तो लड़ाई-झगड़ा करते हैं या किसी बुरे काम में फँसे रहते हैं या सोकर दिन गँवा देते हैं।

राजपुत्रों के प्रच्छन्न चरित्र-चित्रण के साथ उनके चरित्र का प्रत्यक्ष विकास की पंचतन्त्र की कथाओं का मूल उद्देश्य है। अपने इस उद्देश्य में विष्णुशर्मा को शत-प्रतिशत सफलता की उपलब्धि हुई है।

बालकल्याण-साधक संस्कृत-कथाओं में 'दशकुमारचरित' का भी इस प्रसंग में उल्लेख अनुपयुक्त नहीं होगा। महान् कथाकार दण्डी ने अपनी इस कथाकृति की भाषा उन बच्चों के लिए रखी है, जो आगे चलकर महाकवि 'बाणभट्ट' की महत्कथाकृति 'कादम्बरी' में, उसकी लच्छेदार भाषा में प्रवेश पाना चाहते हैं। 'कादम्बरी' संस्कृत का एक अद्वितीय उपन्यास है। उसका गद्य कवियों के लिए निकष-तुल्य (कसौटी) हैं। इसी पर यह कहावत ही चल पड़ी- 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति।' सचमुच, बाणभट्ट जैसा मौलिक गद्यकार प्राचीन भारतीय वाङ्मय में सर्वथा दुर्लभ है। हाँ, अनुकृति के दो-एक गद्यकार कवि जैन साहित्य में अवश्य उपलब्ध हैं, जिनमें आचार्य वादीभसूरि की 'गद्यचिन्तामणि' सविशेष उल्लेख्य है। तो, हम दण्डी के 'दशकुमारचरित' को 'कादम्बरी' का प्रवेश-सोपान कह सकते हैं।

'दशकुमारचरित' दण्डी की गद्य-रचना का उत्कृष्ट उदाहरण है। इसमें दस कुमारों के विभिन्न चरित्रों का रोचक और मनोरंजन वर्णन है। 'दशकुमारचरित' में कुमारों के मन बहलाने का मसाला तो मिलेगा ही, उस समय में प्रचलित अनेक सामाजिक प्रथाओं का परिचय भी प्राप्त होगा। इस चरितकाव्य की विशेषता यह है कि इसमें कुमारों ने अपने-अपने नन्दतिक और रोमान्तिक चरित का वर्णन स्वयं किया है। समीक्षा के क्षेत्र में दण्डी के पद-लालित्य की बड़ी चर्चा है- **'दण्डिनः पदलालित्यम्।'** इस कथाग्रन्थ में भी राजनयिक व्यवहार की बड़ी अच्छी परम्परा वर्णित है। इसके चरितनायक राजवाहन तथा चरितनायिका अवन्तिसुन्दरी का चरित-चित्रण कुमारों के लिए सातिशय प्रेरणाप्रद है।

दण्डी के परवर्त्ती कवि 'क्षेमेन्द्र' ने भी 'वेताल-पंचविंशति' (वेतालपचीसी) नाम का बालोपयोगी कथाग्रन्थ लिखकर बाल-हितैषणा की बहुत बड़ी भूमिका का निर्वाह किया है। यह 'वेतालपचीसी' (वेताल के द्वारा राजा विक्रमादित्य से कही गई पच्चीस कथाएँ) महाकवि गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' का नव्योद्भावन 'कथासरित्सागर' की ही पच्चीस अवान्तर कथाओं का संकलन है। 'वेतालपचीसी' की प्रत्येक कहानी के अन्त में हिन्दी-माध्यम द्वारा कहे जानेवाले 'फिर वेताल उसी डाल पर जा लटका' इस लटके से प्रायः सभी भारतीय कथाप्रिय बच्चे परिचित हैं। इन कथाओं में राजा विक्रमादित्य की उदारता और परोपकारिता से कहानी पढ़नेवाला प्रत्येक बालक मुग्ध हुए विना नहीं रहता। इन कथाओं की ताजगी कभी बासी पड़नेवाली नहीं।

क्षेमेन्द्र की दूसरी विशाल कथाकृति 'बोधिसत्त्वावदानकल्पलता' में बालोपयोगी अनेक शोभन उपदेशात्मक कथाएँ संकलित हैं। क्षेमेन्द्र का उदात्त उद्देश्य है- तत्कालीन राजनीतिक बुराइयों, सामाजिक दोषों और दुर्बलताओं को दिखलाकर उनका निराकरण करना। 'देशोपदेश' तथा 'नर्ममाला' भी कवि-कृत ऐसी ही कथाओं से परिपूर्ण हैं। क्षेमेन्द्र ने अपनी कथाओं में अपनी कथा-प्रतिभा के बल पर हास्य के व्याज से उपदेशात्मकता के साथ ही रोचकता तथा सजीवता भर दी है।

'देशोपदेश' में चित्रित वह गौड़ छात्र अपने पाठकों के लिए सदा अविस्मरणीय रहेगा, जो विद्याध्ययन के लिए कश्मीर पहुँचता है, किन्तु बिना लिपि जाने ही वह

अहंकार से स्तब्ध होकर भाष्य तथा 'प्रभाकर-मीमांसा' पढ़ने लगता है। वह इतना अधिक दम्भी है कि रास्ते में चलते समय लोगों के स्पर्श से अपने को बचाता है और अपनी चादर बगल में दबे रहते के कारण वह अपने पार्श्व को सिकोड़कर रास्ते में चलता है-

स्पर्शं परिहरन् याति गौडः कक्षाकृताञ्चलः।
कुञ्चितेनैव पार्श्वेन दम्भ-भारभरादिव।।

इस प्रकार, बालकों को सन्मार्ग पर ले आनेवाली, उनके जीवन को ज्ञानालोक से प्रकाशित करनेवाली तथा उनके व्यक्तित्व और चरित्र को ऊपर उठानेवाली मंजुल रचनाओं का संस्कृत में अभाव नहीं है। यों तो, समस्त वैदिक, पौराणिक और स्मार्त्त ग्रन्थ ही बालकों के व्यक्तित्व और चरित्र का निर्माण करनेवाले हैं।

बच्चों के स्वास्थ्य की देखरेख की दृष्टि से आयुर्वेद के कौमारभृत्य अंश का भी बड़ा महत्त्व है। कौमारभृत्य, अर्थात् शिशु-चिकित्सा अष्टांग आयुर्वेद का अन्यतम भाग है। इस अंग का बाल-कल्याण से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। कौमारभृत्य में निर्दिष्ट पद्धति से पलनेवाला बालक रोग के पंजे में कभी नहीं आ सकता। साथ ही, वह धृति-स्मृति-ज्ञान से सम्पन्न होकर राष्ट्र का एक स्वस्थ नागरिक बन सकता है।

ध्यातव्य है, प्राचीन ग्रन्थों में मूर्द्धन्य रामायण और महाभारत, ये दो भारत के ऐसे धर्मग्रन्थ हैं, जिनमें भारतीय संस्कृति की आत्मा बसती है, साथ ही इनमें बाल-हितैषणा के उपयोगी अनेक ऐसे कथा-प्रसंग हैं, जिनसे बालकों को अपने व्यक्तित्व-निर्माण में प्रत्यक्ष प्रेरणा मिलती है। रामायण में, विशेषतया राम-लक्ष्मण के अद्‌भुत वीर-चरित्र और महाभारत में पाण्डवों, खासकर भीष्म, अभिमन्यु आदि के, शौर्य और चमत्कारपूर्ण कार्य-कौशलों की अपनी महिमा है, जिनका आदर्श कभी धूमिल नहीं होनेवाला है। श्रीमद्‌भागवतपुराण में वर्णित कृष्ण की बाल-लीला भी अनोखी है, जिससे बालकों को प्रेरणा और प्रोत्साहन तो मिलता ही है, दुष्टों से डटकर मुकाबला करने का अडिग साहस और निर्भीकता भी प्राप्त होती है।

इसी प्रसंग में, बौद्धों की जातक कथाओं तथा जैन आख्यानों और प्रबन्धों की भी चर्चा अनपेक्षित न होगी। संक्षेप में कहें, प्राचीन भारतीय वाङ्मय का समस्त आख्यान-साहित्य ही बाल-हितैषणा को दृष्टि में रखकर रचा गया था। यद्यपि कालिदास जैसे सारस्वत महाकवियों के काव्यों में भी अनेक ऐसे हैं, जिनसे बालक-बालिकाओं के शिक्षण-प्रशिक्षण एवं दनकी सर्वतोमुखी हितैषणा के सम्बन्ध में कवि के दृष्टिकोण से परिचित होने का अवसर मिलता है।

कहना न होगा कि गद्य, पद्य और चम्पू, इन तीनों विधाओं में लिखित संस्कृत-साहित्य में प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों रूपों में बाल-हितैषी तत्त्वों, जैसे बच्चों और चरित्रवान् बनाने, उन्हें निश्छल-निर्भीक बनाकर समाज-सेवा की ओर प्रवृत्त करने और कुल मिलाकर राष्ट्र का एक श्रेष्ठ नागरिक बनाने की बातें पदे-पदे पिरोई हुई हैं। तत्त्वतः, संस्कृत-साहित्य की उपेक्षा करके बाल-कल्याण या बाल-हितैषणा, बालोत्थान या बाल-विकास की बात सोची ही नहीं आ सकती।

३७, भारतीय स्टेट बैंक कॉलोनी
काली मन्दिर मार्ग, हनुमाननगर
कंकड़बाग, पटना-२०

5 8 5

सत्य साईं

▶ *डॉ. एस.एन.पी. सिन्हा*

'शिरदी माझे पंढरपुर' नाम से पावन तीर्थ शिरदी आज विश्वविश्रुत है, इस धरती की धूलि का कण-कण अतीन्द्रिय अनुभव का साक्षी है। सूफी सन्तों की पावन धरती महाराष्ट्र का जिला अहमदनगर, तालुका कोपर गाँव का छोटा-सा गाँव शिरडी, जहाँ कोलाहल भरे क्षणों में सालो भर आनन्दमयी भक्ति के लहरावे सागर में बदल चुका है। परिसर के समीप पहुँचते ही विलक्षण अनुभूति होती है, जिसे केवल वहीं प्राप्त कर सकता है जो यहाँ तक आ सका है। यहाँ हर क्षण होता है 'श्रद्धा और 'सबुरी' की अनुभूति, काकड़ आरती से लेकर शयन आरती तक प्रत्येक क्षण अतीन्द्रिय आनन्द के स्रोत में डूबे क्षण हैं। महसूस वही कर सकता है जो श्रद्धा-भक्ति से ओत-प्रोत है।

सनातन धर्म में धैर्य और श्रद्धा का परम महत्त्व बतलाया गया है। अधीर मनुष्य दिशाहीन होकर भटक जाता है और श्रद्धा भी खो देता है। उसे अपने कार्य की सिद्धि जल्दी न मिलने के कारण जब वितृष्णा उत्पन्न होती है और वह बाधाओं से हारकर या तो कार्य करना ही छोड़ देता है या कार्य की दिशा बदल लेता है, जिससे समय की तो हानि होती ही है, वह किसी कार्य में सफल नहीं हो पाता है। इस स्थिति से बचने के लिए धैर्य और श्रद्धा सबसे आवश्यक है। इसलिए गीता में भी भगवान् कृष्ण ने इनकी महिमा का बखान किया है। आधुनिक युग के श्रद्धेय सन्त साईंबाबा का भी यही मूलमन्त्र है। शिरडी में जो दो दीपक हमेशा जलते हैं, उनके ऊपर ये दो मन्त्र लिखे गये हैं— श्रद्धा और सबुरी। साईं बाबा के इन मन्त्रों के आलोक में श्रद्धा और धैर्य पर प्रस्तुत है डा० एस० एन० पी० सिन्हा का यह चिन्तन।

परम धाम शिरडी श्रीस्थान है। महाराष्ट्र की सन्त परम्परा का विलक्षण और दिव्य आनन्द का धराधाम है यह। कलियुग के अवतार माने जानेवाले साईंनाथ का लीलाक्षेत्र है शिरडी। 'अहं' को जलती धूनी में लोबान की तरह जलाकर वातावरण में सुगन्धि फैलाती है यह। जीवन के सारे 'अहं' को क्षार कर जीवन की सार्थकता का क्षार है यह पावन धाम।

यहाँ आकर सारे सन्ताप शान्त हो जाते हैं। यह परमधाम जाति, धर्म, वर्ग-भेद से परे अनन्य प्रेम की भूमि है, जिसकी धूलि स्पर्श से मनुष्य जन्म सार्थक हो जाता है।

समाधि मन्दिर की दो ज्योति प्रज्वलित है। एक दीये के उपर 'श्रद्धा' और दूसरे दीये के उपर 'सबुरी' लिखा है। यही साईं बाबा का मूल मन्त्र है।

साईं बाबा ने हिन्दू और मुसलिम भाईचारे का मसीहा बनकर एक मिसाल कायम की है। हिन्दू उन्हें अपने करीब मानते थे और मुसलिम उन्हें अपना पैगंबर मानते थे। हिन्दू और मुसलमान दोनों के त्योहार श्रद्धा से मनाये जाते थे। आज शिरडी के समाधि मन्दिर में रामनवमी, विजयादशमी और गुरुपूर्णिमा के मेले लगते हैं। जिसमें क्या हिन्दू, क्या मुस्लिम, क्या सिख, क्या पारसी, विश्व के कोने-कोने से हर धर्म-वर्ग के लोग भाग लेकर परम शान्ति का अनुभव करते हैं। यह सर्वधर्म की पावन तीर्थस्थली बन चुकी है जहाँ हर कोई आकर विश्राम एवं परमशक्ति का अनुभव करता है।

श्रद्धा, सबुरी सत्य साईं बाबा का महामन्त्र है- सत्य साईं में श्रद्धा, भक्ति और धैर्य साधना से मनुष्य 'ब्रह्मज्ञान' प्राप्त कर लेता है। साईं बाबा कहा करते थे कि मन, बुद्धि और अहंकार को बस में रखनेवाला इंसान को ही ब्रह्मज्ञानी का रास्ता प्राप्त होता है। ब्रह्मज्ञान आखिर है क्या? उनके अनुसार पाप से घृणा, ईश्वर से प्रेम, मोहमाया का त्याग, शुद्ध आचारण, इन्द्रियों पर विजय, लोभ का त्याग, मुक्ति की इच्छा, प्रभु की कृपा और त्याग की भावना से ही ब्रह्मज्ञान तक पहुँच सकता है। भगवान् श्री कृष्ण श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है-

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति।।
एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ
नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वा स्यामन्तकालेऽपि
ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति।।

गीता 2/71-72

जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओं को त्याग कर ममता रहित, अहंकार रहित और स्पृहा रहित हुआ जीवन यापन करता है वही शान्ति को प्राप्त करता है और यह ब्रह्म को प्राप्त हुए मनुष्य की स्थिति है इसे प्राप्त कर योगी कभी मोहित नहीं होता और अन्तकाल में भी इसी ब्राह्मी स्थिति में स्थित हो कर ब्रह्मानन्द को प्राप्त हो जाता है।

श्रद्धा और सबुरी से मनुष्य कैसे ब्रह्मानन्द की अनुमति प्राप्त करता है। इस पर विशेष रूप से चिन्तन की आवश्यकता है।

साईं बाबा का पहला महामन्त्र है- 'सबर सबुरी' यानी धैर्य। हमारे शास्त्रों में धर्म के दस लक्षण बताये गये हैं। यहाँ 'धर्म' शब्द संकुचित अर्थ में नहीं लिया गया है अपितु यह कर्त्तव्यपालन, सफलता, श्रेय और मानव जीवन को श्रेष्ठ शिखर बिन्दु परमात्म स्वरूप प्राप्त करने का साधन है। महर्षि मनु ने मनुस्मृति में **धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्** धर्म के दस लक्षण बताये गये हैं। इन दस लक्षणों में सबसे प्रथम सोपान और महत्त्वपूर्ण धृति है। बिना धैर्य के मनुष्य कभी सफल नहीं हो सकता। श्रेष्ठ मानव के लक्षण इस प्रकार शास्त्रों में वर्णित है।

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ।।
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्।।

कठिन समय में धैर्य, उन्नति में क्षमा, सभा में वाक्पटुता; युद्ध में शौर्य, यश में अभिरुचि, शास्त्राध्ययन में रुचि ये सब उत्तम एवं श्रेष्ठ गुण महात्माओं में स्वभावतः होते हैं।

भारतीय संस्कृति में तीन वस्तुएँ अपरिहार्य हैं- परिश्रम, प्रार्थना एवं प्रतीक्षा। सबसे पहले परिश्रम करना चाहिए, परिश्रम के बाद प्रार्थना, ईश्वर में श्रद्धा और विश्वास तथा उसके बाद धैर्य के साथ प्रतीक्षा करनी पड़ती है। अधीर

व्यक्ति कभी न यश प्राप्त करता है और न सफलता। इसलिए ऋषियों ने मानव को धैर्यवान् बनने की सलाह दी है। गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है-

धीरज धर्म मित्र अरु नारि।
आपतकाल परिचारिये चारि।।

धैर्य की परीक्षा तभी होती है जब व्यक्ति पर कोई आपत्ति हो। दु:ख में मनुष्य ईश्वर पर श्रद्धा, विश्वास और धैर्य के साथ उसका सामना सत्कर्म द्वारा करे तो दुख का नाश निश्चित है। इसपर विजय पा मनुष्य सुखानुभूति अवस्था को प्राप्त करता है। योगवासिष्ठ में लिखा है- **अनुद्वेग: श्रियो मूलम्** अर्थात् धैर्य समृद्धि का मूल है। वहीं आगे उल्लेख है-

स्वधैर्यादृते कश्चिन्नाभ्युद्धरति संकटात्।

अर्थात् अपने धैर्य के बिना कोई और संकट से मनुष्य को उद्धार नहीं करता। अपना उद्धार मनुष्य स्वयं करता है।

रामायण में प्रख्यात आख्यानक है- शबरी ने प्रभु राम को पाने के लिए दीर्घ प्रतीक्षा सेवा-श्रद्धा-विश्वास के साथ की थी और प्रभु राम ने उसका उद्धार किया। शबरी का धैर्य सफल हुआ और साक्षात् प्रभु राम द्वारा उसका उद्धार हुआ; शबरी भी प्रभु राम का दर्शन कर राममय हो गयी।

धैर्य धारण करने से ही कर्म-चेतना और कर्म-प्रेरणा की शक्ति मिलती है; हमारी चेतना ऊर्ध्वमुख होती है और इसी से क्षमा भी। धारण का प्रवाह अन्त:करण में प्रस्फुटित होता है। तभी तो सन्त तुलसी ने धीरज और धर्म को परखने की बात कही है। धीरज और उत्साह हमें निरन्तर बना रहे इसके लिए जरूरी है कि हमारा कर्म-धारण दृढ़ हो। कर्म-धारण तभी मजबूत और टिकाऊ हो सकता है, जब शुभ संकल्प निरन्तर रहे। धृति हमारे संकल्प की शक्ति है। इस शक्ति रखने के लिए निरन्तर उत्साहित रहें; धीरज बनाए रहें। भगवान् श्रीकृष्ण गीता में धृति को जीवन विकास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना है, जिससे उत्साह और धीरज कायम रहे, वह शान्ति धृति है। यह संकल्प शक्ति भी है। जीवन को उत्तरोत्तर विकास की सीढ़ी पर ले जाने लिए धैर्य की पहली सीढ़ी पर चढ़े बिना आगे बढ़ ही नहीं सकते हैं। यह नीव है। इसे दृढ़ इच्छाशक्ति से मजबूत बनाकर ही ऊपर की ओर उस परमात्मा तक बढ़ सकते हैं, जो अन्तिम सीढ़ी है और वहाँ पहुँचना ही मनुष्य जीवन का लक्ष्य है।

मनुष्य जीवन का ध्येय, उसका परम पुरुषार्थ मुक्ति अथवा मोक्ष है। मुक्ति का अर्थ- छुटकारा पाना है, आसुरी प्रवृत्ति से, काम क्रोध लाने विकारों से तथा दुर्गुणों से। श्रीमद्भगवद्गीता में भी भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है- काम, क्रोध एवं लोभ ये तीन नरक के द्वार हैं, आत्मा का विनाश करनेवाले हैं। इनका परित्याग करना चाहिए। अधोगति के इन तीनों द्वार से मुक्त हुआ पुरुष अपनी आत्मा का कल्याण करने में समर्थ होता है और परमगति को प्राप्त होता है। आसुरी प्रवृत्ति से छुटकारा पाने का उपाय दैवी सम्पदा को बढ़ाना है। यानी देवगुण आत्मसात् करना है- आत्मस्वरूप प्राप्त करना है। यानी सतत साधना से धैर्य के साथ सत्यस्वरूप को प्राप्त कर लेना धर्म के दसो लक्षणों को आत्मसात् करना है। यह सत्यस्वरूप शुद्ध है, आनन्दमय है, विज्ञानधन है; यह साक्षात् परमेश्वर का स्वरूप है। इसका अनुभव करने के लिए मनुष्य को अपनी संकल्पशक्ति एवं इच्छाशक्ति का पूर्ण विकास करना होगा। धैर्य के साथ लक्ष्य को पाने के लिए सतत साधना करनी होगी।

संकल्प शक्ति के मजबूत होते ही खुद व खुद मनुष्य परहित भावना में जीने लगता है। वह

बहुजनहिताय और बहुजनसुखाय का भाव आते ही मनुष्य ब्रह्मानन्दानुभूति में जीने लगता है। अत: धृति- धैर्य का आश्रय लेना ''**एकहि साधे सब सधै रहिमन सींचे मूल**'' को चरितार्थ करती है। यही 'सबुर' साईं बाबा का महामन्त्र है। इसका एक शब्द विलक्षण महत्त्व रखता है।

दूरगामी दृष्टि लिए परमशान्ति का महामन्त्र श्रद्धा उनका दूसरा महामन्त्र है। इसकी दिव्य दृष्टि में विलक्षण प्रकाश प्रच्छन्न है। 'श्रद्धा' मानव जीवन की अमूल्य निधि है। मानवीय संबन्धों का विशाल प्रासाद है। समाज श्रद्धा रूपी नींव पर आधारित होता है। इसलिए ऋग्वेद में यह प्रार्थना की गयी है कि- 'हे श्रद्धा देवी, हमारे जीवन को श्रद्धायुक्त कर दें।''

'श्रद्धा' शब्द 'श्रत्' और 'धा' दो शब्दों का समन्वित रूप है जिसमें 'श्रत्' का अर्थ है 'सत्य' और 'धा' का अर्थ है धारण करना अर्थात् सत्य को धारण करना। वास्तव में मन, वचन और कर्म से सत्य को धारण करना ही 'श्रद्धा' है।

वर्तमान समाज में मानव जीवन श्रद्धा के अभाव अथवा कमी का प्रदर्शित करता है। श्रद्धा के अभाव में आज मनुष्य में दानव वृत्तियों की वृद्धि होती जा रही है। प्राचीन भारतीय संस्कृति में श्रद्धा का भाव कूट-कूट रहा है- **'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव, अतिथिदेवो भव** आदि। यही कारण है कि समाज में मनुष्य के अन्दर श्रद्धा के चरमोत्कर्ष रूप में दर्शन होते थे। श्रद्धा के कारण मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने राजपाट छोड़कर चौदह वर्ष का वनवास झेला। असत्य पर विजय पायी। नेत्रहीन पति के प्रति अगाध श्रद्धा की ही अभिव्यक्ति थी कि गांधारी ने आजीवन अपने नेत्रों का उपयोग नहीं किया और आँखों को पट्टी से सदैव आवृत रखा। प्रेम, सत्य एवं अहिंसा के सिद्धान्तों के प्रति अटूट श्रद्धा के लिए ईसा मसीह 'क्रूसीफाई' हुए।

सत्य और अहिंसा के प्रति अगाध श्रद्धा के कारण महात्मा गाँधी ने अपने सीने में गोली खायी; परन्तु सत्य और अहिंसा विनाश की पगडंडी पर खड़ी मानव जाति के लिए प्रकाशपथ बने।

श्रद्धा विश्वास की जननी है। श्रद्धा ही ईश्वर की प्राप्ति का आधार है। श्रद्धा से ही मनुष्य ईश्वर-तत्त्व का ज्ञान पाकर परमशक्ति प्राप्त करता है। तभी तो सन्त तुलसीदास ने भगवान् शंकर को विश्वास और भवानी को श्रद्धा का प्रतीक बताते हुए कहा है कि-

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धा: स्वान्त:स्थमीश्वरम्।

अर्थात् श्रद्धा और विश्वास के स्वरूप भवानी और शंकरजी की मैं वंदना करता हूँ जिनके बिना सिद्धजन भी अपने अत:करण में स्थित परमेश्वर को देख नहीं सकते। इस प्रकार श्रद्धा विश्वास ही भक्त की पूँजी है। श्रद्धा के अभाव में शिवमूर्ति एक पाषण निर्मित कलाकृति से अधिक कुछ भी नहीं है। वास्तव में श्रद्धा रूपी प्राण फूँकने पर ही मूर्ति जागरूक प्राणवन्त हो जाती है और उसमें ईश्वरीय अनुभूति होती है और इसमें भगवान् का दर्शन होता है। श्रद्धा का वर्णन गीता में भी है कि जितेन्द्रिय होकर श्रद्धावान् पुरुष ज्ञान को प्राप्त करता है। वह ज्ञान को प्राप्त होकर तत्क्षण भगवत्प्राप्ति रूप परम शान्ति पाता है।

महाभारत के शान्तिपर्व में कहा गया है- ''श्रद्धा सबसे बड़ा देवता है। वही हर सत्कर्मों को पवित्र करती है''। अत: हृदय में श्रद्धा और विश्वास के अभाव में पूजा उपासना से भगवत्प्राप्ति सम्भव नहीं है, ब्रह्मानुभूति भी नहीं।

योगदर्शन में भी कहा गया है कि 'श्रद्धा से ही समाधि सिद्ध होती है'। डा० राधाकृष्णन् कहते हैं- ''मानव के जीवित रहने का एक ही रास्ता है- यह निष्ठा का, श्रद्धा का, विश्वास का, धर्म का मार्ग जो हमें हर समय आनेवाली संकटों को सामना करने के लिए शान्तिमयी आशा से प्रेरित करता है।'' महाभारत के शान्तिपर्व में कहा गया है कि 'अश्रद्धा से बढ़कर पाप नहीं है तथा श्रद्धा पापपुंज को जलाकर ज्ञान के प्रकाश को अलोकित करती है।''

अत: श्रद्धा मानव जीवन का प्राणतत्त्व है; श्रद्धा मनुष्य की ईश्वरीय संपत्ति है; वह ईश्वरत्व प्राप्त कराती है।। आस्था, श्रद्धा, विश्वास आत्मीयता के बिना अखण्ड स्मृति तथा अगाध प्रेम संभव नहीं है। इस दृष्टि जो मनुष्य शीघ्रातिशीघ्र अपने को नीरसता, अभाव, निराशापूर्ण स्थिति, का अन्त करना चाहता है, उसे आस्था, विश्वासपूर्वक अपने प्रेमास्पद सत्य को स्वीकार कर निश्चित एवं निर्भर हो जाना चाहिए। जीवन में सहज ही सुख-शान्ति की धारा प्रवाहित होने लगेगी। श्रद्धा, भक्ति, विश्वास और आस्था की नीव पर भाव स्थापित हो जाय और यह भावना शुद्ध हो, तब शरण में जाने से सब कुछ मिल जाता है यह निष्काम शुद्ध कर्म से ही संभव है। शुद्ध कर्म और शुद्ध भाव सत्य के द्वार खोलते हैं। स्व-पर-भेद बुद्धिरूपा माया की परिधि से मुक्त प्राणिमात्र में सत्य देखने की विलक्षण दिव्यदृष्टि प्राप्त हो जाती है और श्रद्धा के वृक्ष में सत्य स्वरूप सद्भाव के फल दिखाई देते हैं। यानी सत्-चित-आनन्दस्वरूप का दिव्य दर्शन होता है।

सत्य साई बाबा का महामन्त्र श्रद्धा, सबुरी यानी श्रद्धा, विश्वास और धैर्य से मनुष्य को अपना उद्धार स्वयं के प्रयासों से कहना चाहिए- अपने सत्यकर्मो अपने प्रयासों से श्रेष्ठता की सीढ़ी से होते हुए परमात्मा तक, अन्तिम शिखर तक मुनष्य पहुँच जाता है। सर्वशक्तिमान् प्रभु का अंश और जगत् का श्रेष्ठतम प्राणी होने के कारण प्रत्येक मनुष्य में अपने लक्ष्य प्राप्त करने की शक्ति विद्यमान है। अत: सत्प्रयास और सतत सत्कर्म द्वारा अपने अपने स्वधर्म द्वारा यानी स्वाभाविक सत्कर्म द्वारा धर्म, काम और मोक्ष को प्राप्त कर लौकिक एवं आध्यात्मिक सर्वांगीण अभ्युदय प्राप्त किया जा सकता है।

गीता में अर्जुन को सारा उपदेश देने के बाद भगवान् श्रीकृष्ण उपसंहार करते हुए कहते हैं-

स्वे स्वे कर्मण्यभिरत: संसिद्धिं लभते नर:।
स्वकर्मनिरत: सिद्धिन्तथा विन्दति तच्छृणु।।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानव:

(गीता0 18.45, 46)

अर्थात् अपने अपने कर्म में लगे रहकर मनुष्य परम सिद्धि को पा लेता है (परम शान्ति को) कैसे जिस परमसत्ता से सर्वभूतों की उत्पत्ति हुई है और जिससे यह सारा जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वर को अपने अपने स्वाभाविक स्वधर्म द्वारा सत्प्रयास से मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त करता है।

भगवान् रामकृष्ण परमहंस के महामन्त्र 'जीव-सेवा से शिव-सेवा' गीता के उपर्युक्त उपदेश का सार है। संसार के समस्त चर-अचर जीवों की निष्काम सेवा ही ईश्वरीय सेवा है। श्रीमद्भागवत यह ज्ञापन महात्मा गाँधी को अत्यन्त प्रिय था-

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दु:खतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्।।

अर्थात् न मुझे राज्य चाहिए, न स्वर्ग, न मोक्ष। दु:खी जनों के दु:ख का अन्त मेरे द्वारा हो

सके ऐसी सेवा की ही इच्छा है। यह सर्वोच्च निष्काम कर्म सेवाभाव है।

सत्य श्री साईं की दृष्टि में ईश्वर एक, अनन्त असीम, अचल, अखण्ड, अज, अविनाशी, नित्य, सत्य, सनातन, सम, विज्ञान-निधान, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान्, सर्वोपरि, सर्वाधार, सर्वरूप, सर्वतश्चक्षु, सर्व नियन्ता, सच्चिदानन्द और पूर्ण ब्रह्म हैं। वे निर्गुण भी है, सगुण भी, साकार भी है, निराकार भी और इन सबसे परे भी हैं। वे अनिर्वचनीय हैं, अचिन्त्य हैं, तथापि भक्तवत्सल हैं। सब जीवों के कल्याणकर्त्ता हैं। पुकारने से ही प्रकट हो जाते हैं। उनके स्मरण मात्र से ही मनुष्य में अनुभूति और अलौकिक कम्पन का अनुभव होता है और वे हमें सकल-सकल सन्तापों से मुक्त कर, छुड़ाकर आनन्द मुग्ध कर देते हैं। बस जरूरत है सिर्फ चरणों में समर्पण की। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में स्पष्ट कहा है-

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरण व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

(गीता 18/66)

अर्थात् सभी तरह के प्रयास को छोड़कर एकमात्र उनकी शरण में आ जाने से ही सब पापों से मुक्ति हो जाती है; शोक, भय सब नष्ट हो जाते हैं। गीता की यह पंक्ति सम्मिलित रूप से धैर्य और श्रद्धा दोनों की महिमा का गायन करता है। व्यावहारिक रूप से जब विपत्ति में फँसा हुआ मनुष्य धैर्य खो देता है, तब वह एक देवता की उपासना छोड़कर दूसरे देवता की शरण में जाता है। इस ऊहापोह की स्थिति से उबरने के लिए धैर्यपूर्वक एक कृष्ण की शरण में श्रद्धा के साथ जाने का उपदेश किया गया है।

भगवान् के इस प्रेमाह्वान को जो न सुने उससे बड़ा भाग्यहीन और कौन होगा?

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा भी है-

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।।

-गीता 18/62

सब प्रकार से परमेश्वर की शरण में आने पर ही उन्हें उनकी कृपा से परम शक्ति तथा परमधाम को प्राप्त होता है।

आसक्ति त्यागकर ममता रहित परमात्मा को ही अनन्यभाव से अतिशय श्रद्धा भक्ति और प्रेमपूर्वक उनके नाम-गुण-प्रभाव-स्वरूप का चिन्तन करते हुए मनुष्य को अपने कर्मो को निःस्वार्थ भाव एवं सत् प्रयास से निष्पादन करते रहना चाहिए। परमेश्वर के लिए आचरण करना है और यह 'सब प्रकार से परमात्मा की ही शरण' होना है।

अतः उन्हीं के द्वारा कहा गया श्रद्धा-सबुरी को आत्मसात् कर मनुष्य अपना उद्धार, अभ्युदय एवं ब्रह्मानन्द की अनुभूति प्राप्त कर मुक्त, बुद्ध, शुद्ध हो सकता है।

अतः ये बाबा के दो चरण हैं जिसके सहारे चलकर मनुष्य परम शान्ति के द्वार तक पहुँच सकता है और प्रवेश कर उनसे साक्षात्कार प्राप्त कर मुक्त हो जाता है।

वी. 92, पी.सी. कॉलनी
लोहिया नगर, पटना-20

5 8 5

श्रीपार्वतीगीता : एक अनुशीलन

▶*डॉ. राजेन्द्र झा*

संस्कृत वाङ्मय की समृद्ध परम्परा में पहले जहाँ अठारह पुराणों की रचना की गई, वहीं बाद में चलकर अठारह उपपुराणों की भी रचना विभिन्न आधारों तथा विषयों को लेकर सम्पन्न की गई। उनमें महाभागवत देवीपुराण का स्थान महत्त्वपूर्ण माना गया है। जिस प्रकार व्यास विरचित महाभागवत पुराण में भगवान् विष्णु के अवतारों का वर्णन किया गया है, ठीक उसी प्रकार प्रस्तुत देवीपुराण में भगवती की मनोरम लीलाओं की झाँकी दिखायी गई है। वास्तव में, देवीपुराण धर्मसारयुक्त, भक्तिसंवलित तथा विविध काव्यगुणों से मण्डित है। इसके शुभद एवं प्रेरणाप्रद उपदेश अत्यन्त ही पठनीय, संग्रहणीय तथा आचरणीय हैं। आलोच्य प्रस्तुत निबन्ध में, मुख्यतः जगदम्बा के ऐश्वर्य, स्वरूपों एवं लीलाओं तथा उपासना पद्धतियों का मनोहारी वर्णन किया गया है। इसमें कुल मिलाकर एकाशी अध्याय हैं। प्रस्तुत श्रीपार्वती गीता के ऊपर भगवद्गीता के संवादों, विषयोपविषयों, कथनोपकथनों, ज्ञानकाण्ड, कर्मकाण्ड, भक्ति या ध्यानकाण्ड, विभूतियोग, सांख्ययोग तथा विश्वरूप दर्शन और तात्त्विक योगों का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है। महाभारत सागर से समुद्भूत भगवद्गीता यदि अमृत है तो देवीपुराण के निर्मल गर्भ से प्रकाशित होनेवाली भगवतीगीता या श्रीपार्वतीगीता एक अपूर्व पायस है, जिसे पाकर मनुष्य सहज ही मोक्ष प्राप्त कर सकता है। कहा गया है कि जहाँ भोग का स्थान है, वहाँ मोक्ष का स्थान नहीं है। जहाँ मोक्ष का स्थान है, वहाँ भोग का स्थान नहीं है। वैष्णवमार्ग में भोगों को छोड़कर ही मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है, किन्तु शाक्तमार्ग में जगदम्बा की अखण्ड आराधना से भोग और मोक्ष दोनों को आसानी से प्राप्त किया जा सकता है-

यत्रास्ति भोगो न च तत्र मोक्षः,
यत्रास्ति मोक्षे न च तत्र भोगः।
श्रीसुन्दरीपूजनतत्पराणाम्,
भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव।।

इस प्रस्तुत देवीपुराण के आदिवक्ता भगवान् शंकर हैं और जिज्ञासु श्रोता नारदजी हैं। बहुत कठोर तपस्या करने के बाद व्यासजी को विशुद्ध देवी-तत्त्वों का ज्ञान हुआ। आकशवाणी के अनुसार वे ब्रह्मलोक गए।

संस्कृत में 'गीत' शब्द का अर्थ होता है – गाया हुआ। इससे स्त्रीलिंग में 'टाप्' प्रत्यय लगकर 'गीता' शब्द बना। संस्कृत वाङ्मय में श्रेष्ठ एवं प्रसिद्ध होने के कारण 'गीता' शब्द से श्रीमद्भगवद्गीता का संकेत होता है। यह भगवान् श्रीकृष्ण की वाणी के रूप में सभी उपनिषदों का सार है और उपनिषद् शब्द के स्त्रीलिंग होने के कारण इसे भी स्त्रीलिंग में 'गीता' कहा गया है। इसके बाद 'गीता' के नाम से एक परम्परा प्रवृत्त हुई। नारद-गीता, गुरु-गीता, पाण्डव-गीता, हंस-गीता, आदि अनेक पौराणिक सारगर्भित रचनाओं के आगे 'गीता' शब्द जुड़ा। इसी शृङ्खला में देवी-भागवत-महापुराण का एक अंश, जिसमें जगत् के सम्बन्ध में दार्शनिक विचार गुम्फित है 'पार्वती-गीता' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस स्थल पर विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं, संस्कृत के विद्वान् अध्यापक डा0 राजेन्द्र झा।

वहाँ सभी वेदों का दर्शन उन्होंने किया। भगवती को प्रसन्न करने के लिए सभी ने वहाँ मिलकर प्रार्थना के द्वारा माता भुवनेश्वरी देवी का दर्शन प्राप्त किया। वहीं पर प्रसन्न होकर जगज्जननी ने अपने पादस्थित सहस्रकमल-दल का दर्शन व्यासजी को करा दिया। उन दलों में देवी माता के अद्‌भुत चरित और अवतारों तथा लीलाओं का वर्णन अंकित था। उस सबकों व्यासजी ने अपने हृदय में धारण कर बाद में इस अपूर्व शक्ति प्रधान देवीपुराण को हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया।

ब्रह्मस्वरूप, सर्वज्ञा और सर्वशक्ति सम्पन्न माता भुवनेश्वरी ने अपने विविध स्वरूपों का दर्शन देकर व्यासजी के हृदय में उठनेवाले सन्देहों को दूर कर दिया। वस्तुतः व्यासजी जगदम्बा का दर्शन पाकर जीवन्मुक्त हो गए थे। उन्हें यह विश्वास हो गया था कि आदिशक्ति ने ही संसार की सृष्टि की है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश तो भगवती पराम्बा की कृपा से ही सृष्टिकर्ता, पालक और संहारक कहे जाते हैं। भगवती की इच्छा के अनुसार ही इस सृष्टि और ब्रह्माण्ड में सब कुछ घटित होता है। उनकी कृपा से चींटी चन्द्रमा को चूम सकती है और विशाल समुद्र छोटा-सा गढ़ा (गर्त) बन जाता है या हिमालय एक राई-सा दिखायी पड़ने लगता है। असम्भव सम्भव हो जाता है।

व्यासजी ने सर्वदेवमयी, सर्वव्यापिनी, जगदम्बिका में सहस्रों सूर्यों का तेज और करोड़ों चन्द्रों की सुखद शीतल चन्द्रिका को देखकर आश्चययुक्त आनन्द का अनुभव किया। भगवती सहस्रों भुजाओं में विविध आयुधों को धारण किये हुए दिव्य आभूषणों से आभूषित थीं। वे विविध रूप धारण करती हुई कभी विष्णुरूप में होकर उनके वामभाग में लक्ष्मी का रूप धारण करके विराजमान दिखायी पड़ती थीं, कभी राधासहित श्रीकृष्ण के रूप में दिखायी पड़ती थीं। कभी ब्रह्म का रूप धारण कर उनके वाम भाग में सावित्री के रूप में दृष्टि-गोचर होती थीं और कभी शिव का रूप धारण कर उनके वामभाग में गौरी रूप से विराजमान हो जाती थीं। माता अम्बिका ने दर्शन देकर व्यासजी को कृतार्थ कर दिया। महान् पौराणिक मुनि सूतजी ने इस देवीपुराण की काफी प्रशंसा की है। संक्षेप में, व्यासजी देवी की स्तुति कर अपने आश्रम में चले गए-

एवं रूपाणि चालोक्य पराशरसुतो मुनिः।
तां ज्ञात्वा परमं ब्रह्म जीवन्मुक्तो बभूव ह।।
ततो भगवती देवी ज्ञात्वा तस्याभिवाञ्छितम्।
स्वपादतलसंलग्नं पंकजं समदर्शयत्।।
मुनिस्तस्य सहस्रेषु दलेषु परमाक्षरम्।
महाभागवतं नाम पुराणं समलोकयत्।।
प्रणम्य शिरसा देवीं नानास्तुतिभिरादरात्।
जगाम स्वाश्रम भूयः कृतकृत्यः स्वयं द्विजः।।

अ०१५/४७-५०

वस्तुतः भगवद्‌गीता में अठारह अध्याय हैं और 'ईश्वर-गीता' में एकादश तथा 'श्रीपार्वती-गीता' में मात्र पाँच अध्याय हैं। महाभारत के महार्णव से उत्पन्न होनेवाली गीता जहाँ महामणि के समान प्रतीत होती है, वहीं पाँच अध्याय वाली श्रीपार्वतीगीता देवीपुराण के हृदयस्थल से निस्सृत होकर रत्न के प्रकाश के समान जनकल्याण हेतु प्रकट होती है। देवीपुराण के पन्द्रहवें अध्याय से लेकर बीसवें अध्याय तक इसका कलेवर व्याप्त है।

देवर्षि नारदजी के प्रश्नोत्तर के रूप में परमदयालु, भूतभावन, भगवान् शंकरजी के बहुमूल्य उपदेश श्रीपार्वती गीता के रूप में उपन्यस्त किये गए हैं। प्रथम अध्याय में, हिमालय और मेना की कठोर तपस्या से प्रसन्न होकर आदिशक्ति का 'पार्वती' नाम से हिमालय के यहाँ पुत्री रूप में प्रकट होना और उन्हें दिव्य-विज्ञान योग का उपदेश देना आदि विषयों का वर्णन किया गया है। पार्वती के अलौकिक रूप का दर्शन पाकर माँ-बाप निहाल हो गए। वे दोनों आज कृतकृत्य होकर आदिशक्ति की स्तुति करने लगे। हिमालय बोले- "माता, आप प्रसन्न हों, आप परमशक्ति हैं, आपमें सबकुछ सम्मिलत है, आपही इस चराचर जगत् की अधिष्ठात्री और परम आश्रय हैं। शिवे! आप ही सबकुछ हैं, इस त्रिभुवन में आपके अतिरिक्त अन्य कोई तत्त्व विद्यमान नहीं है। आप ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं तथा आप ही पराशक्ति हैं। आपकी

अचिन्त्या लीला का वर्णन मैं कैसे करूँ? जिसका ब्रह्मादि भी पार नहीं पा सकते। इस प्रकार आठ बड़े छन्दों के द्वारा प्रार्थना कर हिमालय ने कहा कि विश्वेश्वरि! आज मेरा जन्म और तप सफल हुआ, जो त्रिलोकजननी भगवती आप मेरी पुत्री के रूप में आयीं। मैं धन्य और कृतार्थ हुआ, जो कि आपने नित्या प्रकृति होकर भी अपनी लीला से पुत्री भाव से मेरे घर में जन्म लिया-

अद्य मे सफलं जन्म तपश्च सफलं मम।
यत् त्वं त्रिजगतां माता मत्पुत्रीत्वमागता।।
धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं मातस्त्वं निजलीलया।
नित्याऽपि मद्गृहे जाता पुत्रीभावेन वै यतः।।

१५/४५,४६

"माता जगद्म्बिका! मैं न तो आपकी स्तुति ही जानता हूँ एवं न भक्ति ही, फिर भी आप अपने दयालु स्वभाव के कारण मुझपर कृपा करती रहें। आपही इस संसार की सृष्टि करती हैं। आप ही सभी कर्मों का फल प्रदान करती हैं। आपही सभी का आधार हैं और आपही सभी को व्याप्त करके स्थित रहती हैं।" इसके बाद हिमालय ने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम करते हुए कहा कि हे देवि! आप काल के लिए भी कालस्वरूपा हैं; अतः लोग आपको महाकाली कहते हैं। आप मुझे कृपापूर्वक उस उत्तम ब्रह्म विज्ञान या ब्रह्मविद्या की शिक्षा दें, जिससे मैं इस भवसागर को सरलता से पार कर जाऊँ-

यस्मात् कालस्य कालस्त्वं महाकालीति गीयसे।
तस्मात् त्वं शाधि मातर्मां ब्रह्मविज्ञानमुत्तमम्।।

अ० १५/५७

महान् पिता हिमालय की जिज्ञासा को शान्त करने के लिए देवी पार्वतीजी ने प्रसन्न होकर कहा कि पिताजी! मैं उस योग का सार समझती हूँ, जिसे जानकर साधक ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। सद्गुरु से मेरे मन्त्र को ग्रहणकर स्थिरचित्त हो साधक को शरीर, मन और वाणी से मेरा ही आश्रय सदा ग्रहण करना चाहिए। मुमुक्षुत्तम साधक को चाहिए कि वह मुझमें ही अपने मन और प्राण को लगाये रखें, तत्परतापूर्वक मेरे नाम का जप करता रहे, मेरे गुण तथा लीला-कथाओं के सुनने में मुग्ध बना रहे। वह मुझसे वार्तालाप करनेवाला है एवं मुझसे शाश्वत सम्बन्ध स्थापित कर ले। इतना ही नहीं, वह उत्तम साधक मेरी भक्ति में तल्लीन होकर अपना मन मेरी पूजा में लगावे। साधक को सर्वदा श्रुति-स्मृति में बताये गए वर्णाश्रमधर्म के अनुसार विधि-विधान से मेरी पूजा और यज्ञ आदि को सम्पन्न करना चाहिए।

ज्ञान से मुक्ति मिलती है और भक्ति या श्रद्धा से ज्ञान प्राप्त होता है। धर्म से भक्ति का उदय होता है एवं यज्ञ-याग आदि धर्म के ही रूप हैं। हमेशा मोक्षार्थी को धर्मरूपी यज्ञार्चन आदि के लिए मेरे इस रूप का आश्रय लेना चाहिए। पिताजी, सभी रूपों में एकमात्र मैं ही विद्यमान हूँ और स्वर्ग के देवता मुझ सच्चिदानन्दरूपा के अंश से ही उत्पन्न हुए हैं, इसलिए वेदोक्त सभी कर्मों से भक्तिपूर्वक मेरा ही अर्चन करना चाहिए। सुधीजनों को अन्य कोई विचार नहीं करना चाहिए।

इस तरह अनासक्त भाव से कर्मों को सम्पन्न कर विशुद्ध अन्तःकरण वाले मोक्षकामुक साधक को आत्मज्ञान की प्राप्ति हेतु सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए। पुत्र-मित्रादि से सम्बन्धों में अनासक्त होकर वेदान्त एवं उपनिषदादि का अनुशीलन करना चाहिए। पुनः ऐसे उत्तम साधक को काम, क्रोध, लोभ एवं मोह आदि विकारों तथा हिंसा का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिए। ऐसा करने से उसे पराविद्या का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। महाराज, जब इस आत्मा की प्रत्यक्ष अनुभूति होती है, उसी क्षण उसे मुक्ति मिल जाती है-

यदैवात्मा महाराज प्रत्यक्षमनुभूयते।
तदैव जायते मुक्तिः सत्यं सत्यं ब्रवीमि ते।।

अ० १५/७०

किन्तु मेरी भक्ति से विमुख प्राणियों के लिए यह प्रत्यक्षानुभूति अत्यन्त दुष्कर है; इसलिए मोक्षसाधकों को विशिष्ट रूप से मेरी भक्ति में ही संलग्न रहना चाहिए। पूज्य पिताजी, यदि आप मेरे द्वारा निर्दिष्ट पथ पर अग्रसर होते रहेंगे तो कभी भी आप सांसारिक तापों से सन्तप्त नहीं होंगे।

पुनः इसी सन्दर्भ में, षोडशाध्याय में, अत्यन्त सरलतापूर्वक ब्रह्मविद्या का उपदेश, आत्मा का स्वरूप विचार, अनात्मपदार्थों में आत्मबुद्धि का परित्याग, शरीर की नश्वरता तथा अनासक्तयोग का निरूपण किया गया है। भगवद्गीता के द्वितीयाध्याय में, जिस ज्ञानाग्नि का उल्लेख किया गया है, वह यहाँ पर ब्रह्मविद्या के रूप में वर्णित हुआ है। वही पहले कठोपनिषद् में अग्निविद्या के रूप में प्रतिपादित हुआ है। गीता के अनुसार आत्मा अज, अव्यय, सनातन, विभु, सत्, चित्, आनन्दघन आदि शब्दों के द्वारा अभिहित हुई है। वह आत्मा सदा अवध्य, अशोष्य, अदाह्य एवं अक्लेद्य है। हिमालय की जिज्ञासा शान्त करती हुई पार्वतीजी कहती हैं कि जिस ज्ञान के द्वारा आत्मस्वरूप का समीचीन अवबोध प्राप्त होता है, वही विद्या है और उसी विद्या को ध्यान भी कहा जाता है। आत्मा, विस्तुतः निर्विकार, विशुद्ध तथा जन्म-मरण आदि से रहित है। देखिए- बुद्धि, प्राण, मन, देह और अहंकार आदि से पृथक् शुद्ध तथा अद्वितीय चित्स्वरूप आत्मा मैं ही हूँ-

संवेत्ति येन ज्ञानेन विद्या तद्ध्यानमुच्यते।
आत्मा निरामयः शुद्धः जन्मनाशादिवर्जितः।।

अ० १६/४

इतना ही नहीं, वह आत्मा बुद्धि आदि उपाधियों से रहित चिदानन्दस्वरूप, आनन्दमय, परमप्रकाशयुक्त, परिपूर्ण एवं सत्य-ज्ञान आदि लक्षणों से युक्त है। एकमात्र वही अद्वितीय, सर्वश्रेष्ठ आत्मा अपने प्रकाश से सभी जीवों के सूक्ष्म देहादि को प्रकाशित करती हुई सबके अन्दर विद्यमान है। मनुष्य को एकाग्रता के साथ इस आत्मा का दर्शन, श्रवण, मनन और निदिध्यासन करना चाहिए।

आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः
श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यश्च।।

इस आत्मा का साक्षात्कार करना इस जीवन का चरम फल है। कहा गया है कि श्रुतिवाक्यों से आत्मा का श्रवण और उपपत्तियों व ज्ञान के द्वारा उसका मनन और मनन कर फिर उसका बार-बार ध्यान या निदिध्यासन करना चाहिए-

श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यः मन्तव्यश्चोपपत्तिभिः।
मत्वा च सततं ध्येयः एते दर्शनहेतवः।।

सांख्यप्रवचनभाष्यम्

संक्षेप में, देह आदि अनात्म पदार्थों में आत्म बुद्धि का परित्याग सर्वथा आवश्यक है; क्योंकि वैसी बुद्धि राग-द्वेषादि दोषों का मूलकरण है। राग-द्वेषादि मूलक दोषों से दोषयुक्त कर्म ही केवल सम्भव है। उनसे प्राणी जन्म-मरण आदि चक्र से घिरा रहता है। अतः शरीरादि अनात्म पदार्थों में उस आत्मबुद्धि का परित्याग श्रेयस्कर समझा गया है।

इसी प्रसंग का विवेचन करते हुए आगे यह कहा गया है कि यह शरीर नाशवान् और अनित्य एवं विनाशशील है। जो लोग दूसरे का उपकार या अहित करते हैं, उनके प्रति उस अपकृत व्यक्ति में सहिष्णुता का भाव किस प्रकार से हो और उनके प्रति उस व्यक्तियों में किस प्रकार से इष्टानिष्ट विषयक राग एवं द्वेष न हो। वास्तव में, यह शरीर पञ्चमहाभूतों जैसे पृथ्वी, आप, अग्नि, वायु और आकाश तत्त्वों से बना हुआ है। इसमें अधिकता पृथ्वी तत्त्व की है और अवशिष्ट चार तत्त्व सहभागी हैं। शरीर ही (देहाभिमान) अहंकार के कारण जीव कहलाने लगते हैं, मगर आत्मा तो अजर, अमर, अविकारी एवं चिरन्तन है। जीव स्वर्ग को प्रणय से प्राप्त कर लेता है और फिर उसका भोग पूरा हो जाने पर वह पुनः मर्त्यलोक आकर जन्म-मरणादि के चक्र में फँस जाता है-

क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।।

परन्तु आत्मा तो पाप-पुण्य और स्वर्ग-नरक आदि से परे है। सारे सुख-दुःखों, पाप-पुण्यों एवं जन्म-मरण आदि बन्धनों से युक्त जीव होता है, न कि वह आत्मा। उस जीव में भी ब्रह्मरूप आत्मा का अंश होने से वह अंशी या अंगी में आत्मसात् होने के लिए लालायित रहता है।

गिरिराज हिमालय की जिज्ञासा को शान्त करती हुई श्रीदेवी पार्वतीजी कहती हैं कि यह आत्मा शुद्ध, पूर्ण एवं सच्चित् एवं आनन्द का विग्रह है-

आत्मा शुद्धः स्वयम्पूर्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।

यह आत्मा मेरी माया से मोहित स्वयं मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ- ऐसा मान लेती है-

अनाद्यविद्या सा माया जगन्मोहनकारिणी।

फलतः जीव (शरीर) ही माया के वश में होकर अपने आपको आत्मा समझ लेता है। यह आत्मा अपने लिंग, रूप, मन, जिसमें वासना निहित रहती है- को धारण कर विवश-सी बनी हुई इस संसार में व्यवहार करती है। जिस प्रकार खिले हुए लाल फूल के समीप स्थित शुद्ध स्फटिक लाल रंग के दिखायी पड़ते हैं, उसी प्रकार बुद्धि, इन्द्रिय आदि के सान्निध्य के कारण आत्मा की भी वही स्थिति होती है। मन, बुद्धि तथा अहंकार जीव के सहयोगी हैं। अपने-अपने कर्मों के अधीन होकर वे ही कर्मफल का भोग करते हैं। वे सभी समस्त विषयात्मक सुखों तथा दुःखों का भोग करते हैं। आत्मा भोग नहीं करती, क्योंकि यह आत्मा प्रभुतासम्पन्न, विकाररहित तथा निर्लिप्त है। अनासक्त योग का वर्णन करते हुए पुराणकार की अवधारणा है कि सृष्टि के समय यह जीव पूर्वजन्म की वासनाओं से युक्त अन्तःकरण के साथ उत्पन्न होता है और वह प्रलय पर्यन्त सृष्टि में निवास करता है। विद्वानों को चाहिए कि विवकपूर्वक मोह से दूर रहें। यह शरीर मन के सन्ताप का है और यह संसार का कारण भी है। यह शरीर कर्म से उत्पन्न होता है और वह कर्म पाप और पुण्य के भेद से दो प्रकार का होता है-

देहः कर्मसमुत्पन्नः कर्म च द्विविधं मतम्।
पापं पुण्यञ्च राजेन्द्र तयोरंशानुसारतः।।

१६/३२

पाप और पुण्य के अनुसार ही जीव को सुख और दुःख भोगने पड़ते हैं। दिन एवं रात की तरह सुख तथा दुःख का भी क्रम स्वतः चलता रहता है। स्वर्गादि सुख के उपभोग करने के बाद भी पुनः जीव के कर्मफलानुसार पुण्य के क्षीण होने पर उसे इस मर्त्यलोक में आना पड़ता है। अतएव आसक्ति का त्याग करते हुए श्रेष्ठ विवेकशील साधक को विद्याभ्यास में तत्पर रहते हुए सत्संग के द्वारा परमसुख या मोक्ष के लिए प्रयास करना चाहिए-

तस्मात् सत्सङ्गमं कृत्वा विद्याभ्यासपरायणः।
विमुक्तसङ्ग परमं सुखमिच्छेद् विचक्षणः।।

१६/३४

आगे सत्रहवें अध्याय में भगवती जगदम्बा द्वारा ब्रह्मयोग का उपदेश, पाञ्चभौतिक शरीर, माता के गर्भस्थ जीव का गर्भ से बाहर आने पर अपने असली स्वरूप को भूल जाना, विषय भोगों की दुःखजनकता तथा देवीभक्ति का महत्त्व जैसे विषयों पर यथेष्ट प्रकाश डाला गया है। वास्तव में, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश रूप पञ्च महाभूतों से यह पार्थिव शरीर बना हुआ है। यह पाञ्चभौतिक शरीर भी चार प्रकार का कहा गया है- (१) अण्डज (२) स्वेदज (३) उद्भिज्ज (४) जरायुज। उनमें, पक्षी और सर्प आदि अण्डज, स्वेद (अत्यन्त उष्णता या गर्मी के कारण) से उत्पन्न होनेवाले खटमल, लीख, ढील, सुंडा, भैरवा और मशक आदि स्वेदज, मिट्टी के नीचे से उगनेवाले सुषुप्त चैतन्य वाले अनेक प्रकार के वृक्ष-झाड़ी, जंगल, नाना प्रकार के शस्य, वनस्पतियाँ और ओषधियाँ आदि उद्भिज्ज तथा मनुष्य और पशु जरायुज कहलाते हैं। शुक्र और रज आदि से निमिति शरीर को जरायुज समझना चाहिए। पुनः जरायुज के भी तीन भेद माने गये हैं- पुरुष, स्त्री और नपुंसक। इस तरह अत्यन्त सूक्ष्मतापूर्वक उत्पत्ति विषयक प्रकरण पर विचार किया गया है। माया से मोहित होकर जीव काम, क्रोध, लोभ और मोह के जाल में फँस जाता है। विवश होकर वह जन्म-मरण आदि के चक्र में पिसता रहता है। भगवती ने हिमालय से कहा कि शाश्वत ऐश्वर्य के हेतु सब कुछ का परित्याग कर निरन्तर मेरी उपासना करने से ही ब्रह्म से स्थित सम्बन्ध बनता है। अपनी आत्मा को शरीरादि की ममता को छोड़ देना चाहिए। हे तात! यदि आप सांसारिक ताप से मुक्ति चाहते हैं तो एकाग्रचित्त होकर अत्यन्त भक्तिपूर्वक मेरी आराधना कीजिए-

पितस्त्वं यदि संसारदुःखान्निर्वृत्तिमिच्छसि।
तदाराधय मां भक्त्या ब्रह्मरूपां समाहितः।।

१७/५१

इसके बाद अठारहवें अध्याय में मोक्ष योग का उपदेश दिया गया है। यह चराचर सृष्टि भगवती आदि शक्ति के द्वारा की गई है। वे सदा त्रिदेवों और इन्द्र आदि दशदिक्पालों से वन्दित एवं पूजित हैं। एकाएक उनके सूक्ष्म स्वरूप को जानना बहुत कठिन है। इसलिए पहले उनके स्थूल रूप जो सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त हैं, उन्हें जानकर ही मोक्ष हेतु देवीमूर्त्ति की उपासना करनी चाहिए। मुक्तिदायिनी वे देवी भी दशमहाविद्याओं के रूप में प्रसिद्ध हैं। यथा- महाकाली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी, बगलामुखी, छिन्नमस्ता, महात्रिपुरसुन्दरी, धूमावती और मातंगी। इनसे मोक्ष मिलता है-

आशु कुर्वन् परां भक्तिं मोक्षं प्राप्नोत्यसंशयम्।।

सभी उपर्युक्त मूर्त्तियों में प्रत्येक देवी मोक्षफल प्रदान करने में पूर्ण समर्थ हैं। अतः हे पिताजी, समर्पित होकर आप किसी एक देवी का क्रियायोग के द्वारा आश्रय ग्रहण करें। इससे आप मुझे प्राप्त कर लेंगे। मुझको प्राप्त होकर महात्मा लोग त्रिविध तापों से पूर्ण जन्म-मरण के जाल में नहीं फँसते। हे राजन्, एकनिष्ठ भाव वाला होकर जो नित्य मेरा स्मरण करता है, उस भक्ति परायण योगी को मैं मुक्ति प्रदान करती हूँ। मेरा स्मरण, पूजन, अभिवन्दन एवं अभिनन्दन कभी भी व्यर्थ नहीं होता। निश्चित रूप से मैं अपने भक्तों को मोक्ष प्रदान करती हूँ-

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं मुक्तिदा राजन् भक्तियुक्तस्य योगिनः।।
यस्तु संस्मृत्यमामन्ते प्राणं त्यजति भक्तितः।
सोऽपि संसारदुःखौघैर्बाध्यते न कदाचन।।
अनन्यचेतसो ये मां भजन्ते भक्तिसंयुताः।
तेषां मुक्तिप्रदा नित्यमहमस्मि महामते।।

१८/३१-३३

इसके बाद अनन्यशरणागति के महत्त्व का वर्णन करते हुए व्यासजी ने संवाद-उपसंवाद के रूप में प्रस्तुत इस प्रसंग को पल्लवित किया है। आदिशक्ति, जगज्जननी अपने आध्यात्मिक ऐश्वर्य से सम्पन्न होकर पर्वतराज हिमालय की जिज्ञासा को उपशान्त करती हुई कहती हैं कि मेरा यह शक्त्यात्मक रूप बिना किसी परिश्रम के ही मुक्ति देनेवाला है, इसलिए आप उस रूप का आश्रय लें। इससे आपको अपश्य ही मोक्ष प्राप्त हो जायगा। मुझे छोड़कर अन्य देवताओं की उपासना से मुक्ति दुर्लभ है। मैं सर्वव्यापिनी हूँ और सभी प्रकार के यज्ञों का फलप्रदान भी करती हूँ। फिर भी मुझमें समर्पण भाव रखता हुआ जो साधक मेरी आराधना करता है; वह कर्मबन्धन से निश्चय ही मुक्त हो जाता है। खाते-पीते, उठते-बैठते, हवन करते और दान देते जो अर्पण बुद्धि से मुझे पुकारता है, उसका कल्याण मैं सर्वदा के लिए कर देती हूँ। जो निश्छल होकर मेरी भक्ति करता है, वह मुझमें है और मैं उसमें स्थित रहती हूँ। मेरे लिए इस संसार में कोई भी प्रिय या अप्रिय नहीं है। अत्यन्त दुराचारी रहा हुआ मनुष्य भी यदि निष्कपट भाव से मेरी उपासना करने लगता है तो वह भी पापरहित होकर भव वन्धन से मुक्त हो जात है-

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
सोऽपि पापविनिर्मुक्तो मुच्यते भवबन्धनात्।।
मन्मना भव मद्याजी मां नमस्कुरु मत्परः।
मामेवैष्यसि संसारदुःखैर्नैव हि बाध्यसे।।

१८/४०,४३

देवाधिदेव ने देवर्षि परम नारायण भक्त नारदजी से कहा कि इस प्रकार पार्वतीजी के मुख से श्रेष्ठ योगसार को सुनकर नगाधिराज हिमालय सद्यः जीवन्मुक्त हो गए। वे त्रिलोक-जननी महेश्वरी भी हिमालय से योग विज्ञान का वर्णन कर लीलापूर्वक सामान्य कन्या की तरह अपनी माता मेना का दूध पीने लगीं। इस प्रकार अजा, प्रकृति, ब्रह्मरूपिणी को अपनी आत्मजा के रूप में पाकर हिमालय और मेना, दोनों आनन्द से झूम उठे। उन्होंने जन्म महोत्सव, षष्ठी महोत्सव तथा नामकरण आदि उत्सवों को सम्पादित करने के लिए बहुत भारी आयोजन किया।

वैसा सुन्दर महोत्सव आजतक किसी ने कहीं भी न देखा था और न सुना था। छठें दिन षष्ठी देवी की पूजा कर दसवाँ दिन आने पर परमज्ञानी हिमालय ने उनका पार्वती नामकरण किया। इस भाँति त्रिलोकपूज्या वह सनातनी महामाया मेना के गर्भ से उत्पन्न होकर हिमालय के घर में रहने लगी। हे श्रेष्ठ भक्त, नारदजी! जो मनुष्य पार्वती के द्वारा हिमालय से कहे गए उत्तम ब्रह्मयोग विज्ञान का पाठ करता है, उसके लिए मुक्ति सुलभ हो जाती है। भगवती भवानी उस मनुष्य पर सदा प्रसन्न रहती हैं और देवी पार्वती के प्रति उसके मन में अखण्ड भक्ति उत्पन्न हो जाती है–

हिमालयाय पार्वत्या कथितं योगमुत्तमम्।
यः पठेत् सुलभा मुक्तिः तस्य नारद जायते।।
तुष्टा भवति शर्वाणी नित्यं मंगलदायिनी।
जायते च दृढा भक्तिः पार्वत्यां मुनिपुंगव।।

१८/६,७

अष्टमी, नवमी और चतुर्दशी तिथि को भक्ति युक्त होकर श्रीपार्वती गीता का पाठ करनेवाला मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है। शरत्काल में महाष्टमी तिथि के उपवास, पाठ और रात्रि जागरण का महत्त्व सबसे बढ़कर कहा गया है। वैसा उपासक हर प्रकार से सुखी एवं सर्वगुण सम्पन्न होकर वंशविभूषण पुत्र प्राप्त करता है। प्रियनारदजी, अमावास्या तिथि के आने पर जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस श्रीपार्वती गीता का पाठ करता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर दुर्गातुल्य हो जाता है। जो बेल के वृक्ष के समीप में बैठकर निशीथ काल में इसका पाठ करता है, उसे वर्षाभ्यन्तर में ही दुर्गाजी का अलौकिक दर्शन सुलभ हो जाता है। संक्षेप में, इस धरातल पर श्रीपार्वतीगीता के पाठ के समान कोई भी पुण्य नहीं है।

किमत्र बहुनोक्तेन शृणु नारद तत्त्वतः।
अस्याः पाठसमं पुण्यं नास्त्येव पृथिवीतले।।

१८/१५

प्रपत्र
नियम ८ के अनुसार

धर्मायण

१. प्रकाशन का स्थान : पटना
२. आवर्तिता : त्रैमासिक
३. प्रकाशक एवं मुद्रक
का नाम : प्रो० काशीनाथ मिश्र
क्या भारत के नागरिक है? : हाँ
(यदि विदेशी हैं तो मूल देश)
पता : महावीर मन्दिर,
पटना जंक्शन, पटना-१
४. सम्पादकमण्डल : प्रो० काशीनाथ मिश्र
महन्त उद्धवदासजी
डा० श्रीरंजन सूरिदेव
आचार्य किशोर कुणाल

प्रधान सम्पादक : भवनाथ झा
क्या भारत के नागरिक हैं? : हाँ
(यदि विदेशी हैं तो मूल देश)
पता : महावीर मन्दिर, पटना
जंक्शन, पटना-१
क्या भारत के नागरिक हैं? : हाँ
(यदि विदेशी हैं तो मूल देश)
पता : महावीर मन्दिर, पटना
जंक्शन, पटना-१
५. स्वत्वाधिकार : श्री महावीर स्थान न्यास
समिति, महावीर मन्दिर,
पटना जंक्शन, पटना-१

मैं प्रो० काशीनाथ मिश्र एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

ह० प्रो० काशीनाथ मिश्र

कीट्स-काव्य और कामायनी

▶ *डॉ. अशोक कुमार 'अंशुमाली'*

जीवन और जगत् की सम्यक् समीक्षा ही साहित्य की चरम सिद्धावस्था होती है- ऐसा मानना शायद अनुचित नहीं है। इसका मतलब यह नहीं कि साहित्य तथ्यों अथवा सूचनाओं की यथाप्रस्तुति है; बल्कि यह मानवीय अनुभूतियों एवं संवेदनाओं की सौन्दर्यपरक अभिव्यक्ति भी है। वस्तुतः कलाकार का अभीष्ट अमर चेतना का सुन्दर शिल्पण होता है। कोई भी कलाकार कला की सीमित साधना में ही सही, लेकिन वह जीवनानुभव की प्रस्तुति में नियतिकृत नियम रहित स्वतन्त्र एवं निखिल तन्त्र से विमुक्त होता है। तभी तो महान् नाटकार शेक्सपियर ने कवि की कल्पक उड़ान को धरती और आकाश का सहज यात्री माना है। जीवन के मसृण भावों को कोमलकान्त पदावली द्वारा हृदयरंजक एवं आवर्जक बनाना अपेक्षाकृत सुगम माना जाता है, किन्तु कला-जगत् में जीवन के कठोरतम क्षणों को भी मानवीय चेतना के संस्पर्श से आनन्दकर और रूचिकर बनते देखा जाता है। महाकवि प्रसाद की पंक्तियाँ ध्यातव्य हैं-

अनुपम वरदान चेतना का
सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं।
जिसमें अनंत अभिलाषा के
सपने सब जगते रहते हैं।।

कामायनी, आशा सर्ग

सौन्दर्य को चेतना अनुपम वरदान इस अर्थ में माना जाता है कि उसकी अखण्डता-नित्यनवीनता अक्षुण्ण बनी रहती है। शुक्ल भावों का आकर्षक और मनोहारी होना तो स्वाभाविक है, लेकिन आश्चर्य तब होता है जब शकुन्तला के रुदन और मनु की मानसिक पीड़ा में भी पाठक को अद्भुत आनन्द का रसानुभव होता है। यह काव्यकला की उस दिव्य लोकोत्तर सौन्दर्य-चेतना का ही परिणाम है, जिसे भारतीय आचार्यों ने ब्रह्मानन्द सहोदर

वैश्विक समन्वय के सन्दर्भ में यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि उत्कृष्ट चिन्तन के स्तर पर भारतीय चिन्तन और पाश्चात्य चिन्तन के बीच की दूरी समाप्त हो जाती है, इसलिए हम शेक्सपीयर के साहित्य में गीता का दर्शन पाने में समर्थ हो जाते हैं। दूसरे शब्दों में, भारत के महान् कवियों ने जगत् और सृष्टि के सम्बन्ध में जिन दर्शनिक पक्षों को प्रस्तुत किया है, वह पाश्चात्य कवियों से भी अछूता नहीं रहा है। इसे हम प्रभाव ग्रहण न कहकर उच्चस्तरीय चिन्तन का समन्वय कहें तो बेहतर होगा और वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना समृद्ध होगी। इसी परिप्रेक्ष्य में हिन्दी के विख्यात कवि जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' के साथ अंग्रेजी के महाकवि कीट्स के काव्यों के बीच तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर रहे हैं अंग्रेजी के अध्यापक डा0 अशोक कुमार अंशुमाली।

तथा पाश्चात्य काव्याचार्यों ने ईश्वरीय प्ररेणा (Divine Inspiration) की संज्ञा से अभिहित किया है।

कभी-कभी तो आचार्यों ने काव्य-सौंदर्य की श्रेष्ठता और उसकी महनीयता के प्रतिपादन-क्रम में विश्व-स्रष्टा वेधस् की सृष्टि को अपेक्षतया अल्पायु बताया है। उदाहरणार्थ, कहने की आवश्यकता नहीं कि विधातासृष्ट ऋषिकन्या शकुन्तला का देहावसान कब का हो गया किन्तु, कविकुलगुरु कालिदास की कवि-चेतना से उद्भूत शकुन्तला 'यावच्चन्द्रदिवाकरौ' जीवित रहेगी। ऐसा इसलिए सम्भव होता है कि कला आन्तरिक होने के साथ-साथ अन्तःप्रज्ञा से प्रेरित होने के कारण अखण्ड होती है। चूँकि अन्तःप्रज्ञा से अखण्ड होती है, अतएव उससे उद्गीर्ण अभिव्यंजना भी अखण्ड होगी; फलतः काव्यकला की अखण्डता और सौंदर्य की शाश्वतता स्वयं सिद्ध हो जाती है।

सम्प्रति साहित्य का संसार अन्तर्देशीय हो गया है, ऐसी अवस्था में दो भिन्न-देशीय महाकवियों की कवि-प्रतिभा की परस्पर तुलना एवं उनकी काव्यगत तत्त्वों की मीमांसा विशेष आनन्द का कारक तो है ही, इसके साथ-साथ देश-काल-निरपेक्ष सार्वभौम एवं सार्वकालिक उन मौलिक काव्य-लक्षणों की निर्मिति का मार्ग भी प्रशस्त होता है, जिनके अभाव में किसी देश अथवा किसी युग की रचना महाकाव्य का स्थान नहीं ले सकती। हालाँकि, उन वैश्विक काव्य-लक्षणों के सहभाव में परम्परागत देशकालसापेक्ष शास्त्रीय सीमाओं की बाधा होने पर भी किसी कृति को महाकाव्य के गौरव से वंचित नहीं किया जा सकता है।

कामायनीकार प्रसाद और कीट्स दोनों ही कला में सौन्दर्य के साधक हैं। भारतीय आदर्श से प्रभावित होने के कारण कामायनीकार सौन्दर्य और सत्य के साथ शिव की साधना में तत्पर हैं। प्रसाद की दृष्टि में कर्म, इच्छा और ज्ञान की समन्वित-संतुलित भावमयी रूपकात्मक कल्पना ही लोकमंगल का साधन है। जबकि, कीट्स सौन्दर्य को सत्य में और सत्य को सौन्दर्य में देखने के आग्रही हैं।

Beauty is Truth Truth's Beauty.

x x x

A thing of beauty is joy forever.

कीट्स की मान्यता है कि आनन्द के अतिरिक्त कुछ नहीं है और शाश्वत आनन्द निश्चित रूप से सौन्दर्य के उपादान में ही उपलब्ध हो सकता है। किंचित् अन्तर के साथ प्रसाद ने भी स्वीकारा है-

अपने सुख दुःख से पुलकित
यह मूर्त विश्व सचराचर।
चिति का विराट वपु मंगल
यह सत्य सतत चिर सुंदर।।

'हायपेरियन' और 'कामायनी' लिखते समय क्रमशः कीट्स और प्रसाद के मन में जैसी अन्तःप्रज्ञा का स्फुरण हुआ होगा, वह सर्वथा उनका निजत्व होगा और उसकी तदनुरूप अभिव्यंजना भी उनकी अपनी होगी। कहने की आवश्यकता नहीं कि कामायनी एवं हायपेरियन दोनों महाकाव्य है। इन दोनों रचनाओं के अर्थ-गर्भ में प्रवेश के पहले दोनों रचनाकारों की अन्तःप्रज्ञा के साम्य-वैषम्य का विवेचन-विश्लेषण अपेक्षित है।

कीट्स द्वारा काव्य-रचना के लिए उदात्तता की वकालत तथा उसके अनुपालन की प्रतिबद्धता की पृष्ठभूमि में अवश्य ही लोंगिनुस की चिन्तन-प्रेरणा रही है। इसके साथ ही, कीट्स को 'महाकाव्य' हायपेरियन की रचना करते समय कथानक की प्रौढ़ि एवं तदनुकूल उदात्त-आभिजात्य काव्य-भाषा प्रयोग की शिक्षा महाकवि मिल्टन से मिली है। यद्यपि मिल्टन और कीट्स की भाषा-विषयक धारणाओं में आपाततः विरोध दीखता है;

क्योंकि मिल्टन जहाँ अपने महाकाव्य में भव्यतम शब्दों के प्रयोग के आग्रही मात्र ही नहीं है, अपितु उसके सफल प्रयोक्ता भी है; वहाँ कीट्स रोमांटिक भावधारा से जुड़े होने के कारण अन्तर्द्वन्द्व के शिकार हो जाते हैं और अन्ततः मिल्टनवादी भाषाप्रौढ़ि का परिहार कर देते हैं। परिणामतः 'हायपेरियन' असमाप्त रह जाता है। रोमांटिक काव्यधारा के घोषणा-पत्र में कविता के अन्तर्गत सामान्यतम शब्दों के प्रयोग पर बल दिया गया है। अतएव, समकालीनता तथा घोषणा-पत्र की तात्कालिकता से प्रभावित होने के कारण शब्दप्रौढ़ि से कीट्स का मोहभंग हो जाता है और यही 'हायपेरियन' के रचना-अवरोध का कारण बनता है।

कीट्स दो कारणों से 'हायपेरियन' की रचना का मोह-त्याग करते हैं। पहला तो यह कि उत्तरवर्ती आलोचक उन्हें मिल्टन का अनुकर्त्ता कहकर उनका उपहास करेंगे और दूसरा यह कि वे तद्युगीन काव्यधर्म के विरुद्ध अँगरेजी भाषा का अहित कर रहे हैं। तद्युगीन काव्य-भाषा का अहित इस अर्थ में कि यदि एक ओर रोमांटिक भावधारा के कवि काव्यभाषा को जनभाषा के समीप लाने का प्रयत्न कर रहे हैं तथा उससे शक्ति और सजीवता प्राप्त करने का आग्रह फरमा रहे हैं, तो दूसरी ओर कीट्स परम्परागत शास्त्रवादी काव्यप्रकृति के अनुपालन में आकण्ठ डूबे नजर आ रहे हैं। इन अर्न्तद्वन्द्वों से कीट्स अपने को आन्दोलन नव्यशास्त्रवादी बौद्धिक एवं पिष्टपेषित कालशैली के प्रति एक सबल प्रतिक्रिया थी; अतः कीट्स 'हायपेरियन' की रचना में समकालीन काव्यशैली की मुख्यधारा से अपने को अलग होते देख काफी हतप्रभ हो जाते हैं। हालाँकि, उनकी पूर्ववर्ती रचनाएँ रोमांटिक काव्यान्दोलन की अमूल्य निधियाँ हैं; यहाँ तक कि उनसे तत्कालीन रोमांटिक काव्यशास्त्रीय सिद्धान्त-सूत्रों का निर्माण होता है- ऐसा कहना सर्वथा समीचीन सिद्ध होगा।

भारतीय साहित्य-पट पर जयशंकर प्रसाद की स्थिति भी करीब-करीब वैसी ही है। रीतिकालीन आचार्यों ने कविता-कामिनी को विलासिता की वन्दिनी तो बना ही दिया था, काव्यशास्त्रीय रूढ़िवादी मान्यताओं की चेरी होने की भी घोषणा की थी। और तो और, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी कविता को रीतिमुक्त होना कतई पसन्द नहीं करते और छन्दोभंग को ब्रह्महत्या के सदृश पातक समझते थे। उनके सिद्धान्तों के परिपालन में हरिऔध ने पूरी दक्षता दिखायी है जिसका 'प्रियप्रवास' अन्यतम उदाहरण है, यह निर्विविवाद रूप से कहा जा सकता है। किन्तु, स्वभावतः उन्मुक्त विहारिणी कविता-कामिनी इन रीतिबद्ध अभिव्यंजनाओं में दमघुटन-सा महसूस, करती है और अन्ततः भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवं बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की कविताओं में अपना आश्रय ढूँढ़ लेती है। कटककुण्डलादिवत् आरोपित कृत्रिमता के प्रति कविता-कामिनी विद्रोह करती है, जिसकी चरम परिणति छायावादी काव्य-चेतना के रूप में होती है। हिन्दी छायावादी काव्य-चेतना का आरम्भ यदि बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' हैं, तो उसका चरम विकास जयशंकर प्रसाद और उनकी 'कामायनी' में हुआ है।।

प्रसाद और कीट्स में मौलिक भेद यह है कि प्रसाद छायावादी काव्यान्दोलन की यदि चरम परिणति हैं तो कीट्स रोमांटिक भावधारा की चरम उन्नति और अवनति दोनों ही। जैसा कि मैंने पहले चर्चा की है कि कीट्स की आरम्भिक रचनाओं में अंगरेजी रोमांटिक काव्य-चेतना चरमोत्थान पर है तो उत्तरवर्ती रचनाओं- 'हायपेरियन' और 'एनडायमियन' में उसका पतन हो जाता है। किन्तु, प्रसादजी के साथ परिस्थिति बिल्कुल अनुकूल है। उनका कवि-व्यक्तित्व उनकी लघु कविताओं

में छायावादी मान्यताओं के साथ प्रयोग करते हुए क्रमशः विकसित हो रहा है जिसका चरमोत्कर्ष है- 'कामायनी'। यदि सच पूछा जाय तो यह कहना युक्तियुक्त होगा कि गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस के बाद हिन्दी-साहित्य में अगर कोई विश्वस्तरीय महाकाव्य की रचना सम्भव हुई है तो वह निश्चित रूप से 'कामायनी' ही है।

हालांकि, कीट्स की आयुक्षीणता और सद्यः मृत्यु के कारण उसकी कवि-प्रतिभा को विकसित होने का पर्याप्त अवसर नहीं मिला। फिर भी, केवल पच्चीस वर्षों की प्रतिकूल अल्पावधि (१७९६-१८२१) में ही उसकी कवि-प्रतिभा का जो भास्वर रूप प्रकट हुआ, उसके आधार पर प्रसिद्ध आलोचक मिड्डलटन मर्रे का यह अभिमत, कि यदि कीट्स दीर्घायु होता तो शेक्सपियर की कवि-प्रतिभा भी उसके समक्ष दरिद्र बन जाती, सत्य प्रतीत होता है। इतना ही नहीं, कीट्स उन्नीसवीं शताब्दी अंगरेजी साहित्य के न केवल सर्वश्रेष्ठ कवि हैं, बल्कि आलोचनात्मक चित्तवृत्ति के समर्थ व्याख्याता भी हैं। यदि जयशंकर प्रसाद ने कविता, नाटक, निबन्ध और कहानी-लेखन के विविध क्षेत्रों में अपनी सहजात नैसर्गिक प्रतिभा के साथ-साथ काशी के अनुकूल साहित्यिक-सांस्कृतिक परिवेश एवं अपेक्षित पारिवारिक समृद्धि तथा करीब साठ वर्षों के जीवन-काल का सदुपयोग किया, तो कीट्स ने भी अपने प्रतिकूल लघुजीवन में कविता, पत्र-लेखन और समीक्षा के क्षेत्र में, सीमित ही सही, किन्तु जैसी अभूतपूर्व सफलता पायी है वह सचमुच विश्व के साहित्येतिहास में सर्वदा अविस्मरणीय रहेगा।

जयशंकर प्रसाद की कामायनी का उपसंहार इस तरह होता है;

समरस थे जड़ या चेतन
सुन्दर साकार बना था।
चेतनता एक विलसती
आनन्द अखंड घना था।।

किसी भी रचना का उपसंहार-वाक्य साभिप्राय होता है। क्योंकि काव्यकार उसमें कथ्य की अन्तिम छाप छोड़ना चाहता है। संतुलित जीवन-दर्शन से आपूरित उपर्युक्त पद में मानव जाति की समस्याओं का निदान भी है और समाधान भी। मनु द्वारा स्थापित सारस्वत प्रदेश की नगरी भौतिक सामर्थ्य और विज्ञान प्रदत्त शक्ति से संवलित तो है किन्तु आत्मीय स्तर पर संकीर्णता, स्वार्थलालुपता, आपाधापी, प्रतिशोध एवं रक्तपिपासा जैसी दानवी वृत्तियों से आक्रान्त है। एक ओर बुद्धि का असीम विस्तार और दूसरी ओर हृदय की अपरिमित संकीर्णता-अजीव असंतुलन है। बुद्धि के संकेत पर आदिपुरुष मनु के प्रकृति के साथ संघर्ष किया, उसका दुष्परिणाम आज सारा मानव-वंश भुगत रहा है- प्रसादजी की ऐसी मान्यता है:-

प्रकृति शक्ति तुमने यंत्रों से सबकी छीनी।
शोषण कर जीवनी बना दी जर्जर झीनी।।

कीट्स की अपनी मान्यता है कि सुख और आनन्द अल्पकालिक है, जीवन का सच तो पीड़ा है। 'औड टू अ नाइटेंगल' कविता में कीट्स ने जीवन के दुःखमय रूप का विशेष अंकन किया है और मनुष्य-समुदाय को परस्पर की व्यथा-कथा के वक्ता-श्रोता के रूप में चित्रित किया है। उसका अभिप्राय है कि खण्डित मानसिकता से ग्रस्त जीवन का प्रत्येक पक्ष सन्तुलन के अभाव में त्रासद बन गया है।

The weariness, the fever and the fret.
Here, where men sit and hear each other groan;

x x x

Where but to think is to be full of sorrow
And leaden-eyed despairs."

-Ode to A Nightingale.

डी.एच. लॉरेन्स ने भी यन्त्राश्रित सभ्यता और बुद्धिवादी प्रगति को मानव-जाति के मूल्य-विघटन का कारण माना है। अतः मानवीय अवमूल्यन की विभीषिका से मुक्ति के लिए आवश्यकता है न केवल इच्छा की, न केवल बुद्धि की और न केवल क्रिया की, अपितु आवश्यकता है इन तीनों के समन्वय-सन्तुलन की जो शान्ति का स्थापक तो होगा ही, सुख और आनन्द का कारक भी होगा। इन त्रिशक्तियों का असन्तुलन ही मनुष्य की समस्त आधि-व्याधियों का मूल है; इनका परस्पर सन्तुलन ही शान्ति एवं सुख का साधन है।

कामायनी में प्रस्तुत निराशा का स्वरूप कीट्स के जीवन-दर्शन से समता रखता है। कीट्स की मान्यता है कि संसार दरिद्रता और हृदयहीनता से भरा है, वेदना और यंत्रणा, रुग्णता और तनाव ने विश्व को अन्धकारमय बना दिया है- मुक्ति का कोई भी पथ आलोकित नहीं है- सब-के-सब धूमाच्छन्न हो अन्धकार की ओर अग्रसर हैं।

कामायनी के आरम्भिक एवं अन्तिम कुछ सर्गों को छोड़ शेष सभी सर्गों में प्रसादजी ने अवसाद और पीड़ा का स्वर फूँका है। यहाँ तक कि सर्गों का नामकरण वैसी भाववाचकीय संज्ञाओं से होता है जो मानव-मन की भिन्न अवसादपूर्ण क्षणों की कल्पित विवृत्ति भी हैं। 'चिन्ता' से 'संघर्ष' तक केवल मानसिक अर्न्तद्वन्द्व का ही वर्णन है। यदि कहीं भी तिमिराच्छादन के बीच आशा और उमंग की कोई विरल चेतना किरण है तो उसका अवसान नैराश्य और आत्मग्लानि में ही होता है। अपनी रचनाओं में कीट्स ने भी करुणतम क्षणों को ही अधिक महत्त्व दिया है। किन्तु इसके साथ कीट्स ने विश्व की अनित्यता में नित्यता की खोज, दुःख धारण का सिद्धान्त प्रस्तुत किया है। हालाँकि, मानस में तरंगायित इन अन्तर्द्वन्द्वों का समाधान उनकी सद्यःमृत्यु के कारण सम्भव नहीं हो सका।

परन्तु, कामायनी में प्रसाद ने 'संघर्ष' सर्ग के बाद सूक्ष्म कथा-तत्त्वों के ताने-बाने से जीवन के आनन्दवादी पक्ष का उद्घाटन किया है। उनके लिए ऐसा सहज भी था, क्योंकि उनकी रचना की पृष्ठभूमि में भारतीय आनन्दवादी दर्शन का संस्कार था जो जीवन का पर्यवसान सुख और आनन्द में मानता रहा है। शायद यदि कीट्स अधिक दिनों तक जीवित भी रहते तो भी जीवन की आनन्दमूलक व्याख्या प्रस्तुत करने में कहाँ तक महारत हासिल करते, यह संशय का विषय है। उनकी यह असमर्थता उनके कवि-कर्म के दुर्बलता के कारण नहीं है, बल्कि पाश्चात्य जीवन-दर्शन के दुःखान्तक होने के कारण है। हालाँकि, टी०एस० इलियट के 'द वेस्ट लैण्ड' में जीवन का आशावादी दृष्टिकोण उभरकर प्रकट होता है, किन्तु ऐसा इसलिए सम्भव हुआ कि 'द वेस्ट लैण्ड' की मुख्य रचना प्रेरणा बृहदारण्यकोपनिषद् है जो निराशावादी भावों के बीच आशावादी दृष्टिकोण की स्थापना का आग्रही है।

व्याख्याता
अंगरेजी विभाग,
कॉलेज ऑफ कॉमर्स, पटना

मैथिली भक्ति लोकगीतों में जीवन-दर्शन

▶ *प्रो० डी० आर० ब्रह्मचारी*

विद्या-धन-पद निर्विशिष्ट जनसामान्य मन ही 'लोक' कहलाता है। अंगेजी में इसके लिए 'फोक' (Folk) शब्द चलता है। समाज का बहुजन ही उसका केंद्रक होता है जिसका उसकी समस्त जीवन-पद्धति पर पूर्ण प्रभाव होता है और जो अधिकांश सामूहिक अवचेतन से नियंत्रिक होता रहता है। किसी भी प्रकार के भय से त्राण पाने के लिए वह अपने इसी अवचेतन स्थित शक्ति के समक्ष समर्पण करता है, यही उसका देवता होता है जिसकी अभिव्यक्ति उसके कला-साहित्य-दर्शन-संस्कृति में होती है। यही है लोकविश्वास, जिसमें छिपी होती है उसकी भक्ति-भावना जो उसे सब प्रकार के कष्टों से निजात दिलाकर तोष प्रदान करता है। जीवनी-शक्ति देता है। जहाँ न तो कर्मकाण्ड की बौद्धिकता है, न उपासना का देह दण्डन और न प्रकृष्ट अर्थना-प्रार्थना ही। वहाँ है केवल निश्छल हृदय का समर्पण दैन्य, निरहंकार और अकिंचन भाव।

केओ चढावे फूल हे माता केओ बेलपात।
हमहूँ अभागलि हे माता चढ़ैलों हरियर दूभि।।

-विषहरि का गीत

विद्या, साधना, ज्ञान, धन, समृद्धि का भाव भक्तिमार्ग में सबसे बड़ा बाधक होता है। इनसे अहंकार का उदय होता है, जिससे भक्त और भगवान् के बीच दूरी बन जाती है। किन्तु सामान्य लोक इन सबसे परे है। उसके पास दैन्य का भोगा हुआ यथार्थ है; अभाव के साथ उसका मानो जन्म-जन्मान्तर का एक अटूट सम्बन्ध है। ईश्वर के प्रति आत्मनिवेदन में उसके कण्ठ से जो स्वर फूटता है वह असाधारण भक्ति-साहित्य है; क्योंकि उसमें विद्या-बुद्ध का विलास नहीं होता; हृदय से निकला हुआ केवल आर्त्तनाद होता है। लोकगीत के रूप में सदियों से चली आ रही वाणी में वही विशेषता पायी जाती है। मिथिला क्षेत्र के लोकगीतों में इसी विशेषता का निरूपण कर रहे हैं **प्रो० डी० आर० ब्रह्मचारी।**

अपने दुःख का कारण वह सामाजिक-आर्थिक नहीं मानता, बल्कि वह मानता है-

विधि विपरीत भेल,
गरीब के जनम भेल
हरि लेल अकिल गियान
दुसह दुख दीन के।
अन्न ओ वस्त्र बिना
चैन नहिं राति दिना
नहिं ऋण के ठिकान
दुसह दुख दीन के।
कर्मक हीन दानी
किछुओं दिय' ये प्राणी
सब दुख दरिद्र समान
दुसह दुख दीन के।

-भगवान का गीत

वह महज इतना जानता है। उसे विश्वास है भक्त वत्सल दीनबन्धु उसका उद्धार एक दिन अवश्य करेंगे। जो गज की ग्राह से रक्षा कर सकते हैं, द्रौपदी की लाज बचा सकते हैं तो उसका उद्धार नहीं कैसे करेंगे। वह क्या जाने-

जब तक मनुज का सुख भाग नहीं सम होगा।
शमित न होगा कोलाहल दुःख दर्द नहीं कम होगा।।

मैथिली भक्ति लोक-गीतों का जब हम अनुशीलन करते हैं तो इस तथ्य की पुष्टि होती है। साथ-साथ व्यक्त होती है, जिसमें यहाँ के लोगों की जीवन-दृष्टि। वहाँ गंगा, जिसके जल में दो भाग हाइड्रोजन और एक भाग ऑक्सिजन

भर न होकर अवचेतन का वह अखण्ड विश्वास संनिविष्ट होता है, जिसके कारण वह कह उठता है-

एक अपराध छेमब मोर जानी
परसल माय पाय तुअ पानी।

उसकी इस मनोवृत्ति के निर्माण में परम्परा की महती भूमिका होती है। नहीं तो पानी तो केवल पानी होता है। उसको इससे मतलब नहीं, उसको तो मतलब है-

जय गंगा कहु गंगा कहु भोरे जौं सुख चाहत भाइ,
रहै एक कोइ पापी धातो मरल मगह में जाई।
तकर मांस गिध कौओ नहिं खाबै कुक्कुर देखि डराई।
गलि गेल मांस हाड़ भेल कड़ाकहि, रोम रोम बिल गाइ,
जय गंगा गंगा कहु भोरे जौं सुख चाहत भाइ।
पक्षी एक उड़ल गंगा सँ तनिक पक्ष फहराइ,
ताके बुंद पड़ल पद पंकज सुर विमान लै जाइ।
देखहु गंगाजी के मरिमा से कोना तरि जाइ,
गेल धाम बैकुंठ मुदित मन, आरति सब उतराइ।
'लक्ष्मीपति' गंगाजी के मरिमा चले निसान लगाइ।

-गंगा का गीत

उसी तरह उसका सूर्य भी वह सूर्य नहीं होता जिसकी किरण को पृथ्वी पर आने में लगभग आठ मिनट का समय लगता है, बल्कि उसका सूर्य तो वह होता है जब छठ के दिन हाथ में अर्घ्य लेकर व्रती-उपासिका आ-कटि जल में खड़ी होकर बाँझिन के लिए पुत्र की कामना करती है, निर्धन के लिए धन और कोढ़ी के लिए अपने रोग निवारण की अभ्यर्थना।

सीता सुनयना से कहती है जब वह गौरी पूजने को कहती है-

कहति सीता दाइ सुनु हे सुनयना,
गौरी से माँगू वर, आब से कहुना।

इस पर सुनयना उसे सिखलाती है-

सास ससुर माँगू, वीर दियर माँगू,
कंत माँगू श्रीराम, गौरी पुजू ना।

और भी,

आहे ऋषि जनक सन बाप,
कि माय रानी सुनयना हे।
दोसर पहर गौरी पूजल,
इहो वर माँगल है।
आहे राजा दशरथ सन ससुर,
कि सासु, कौशल्या रानी है।
तेसर पहर गौरी पूजल,
इहो वर माँगल है।।
माँगल रामचन्द्र सन कंत
लछमन दीयर हे।
चारिम पहर गौरी पूजल,
रहो वर माँगल हे।।
मिथिला जनकपुर नैहर,
कि सासुर अयोध्या सन हे।
पाँचम पहर गौरी पूजल,
इहो वर माँगल हे।।
लव-कुश सन वर पुत्र
कि सेवक श्री हनुमान हे।।

यह केवल सीता की नहीं, यहाँ की कुमारी कन्याओं की कामना है।

जीवछ से यहाँ की स्त्रियाँ निवेदन करती है-

सेवक कें देहो मैया दूध फूल हे,
भगता के जस देहो हे।

कबूतरा माय कहती हैं-

जौं नहिं बासा देबय गे लवँग मलिनिया,
हरि लेबौ गे सिर के सिंदूरवा गे मालिन।
हरि लेबौ गोदी के बलकबा।

मालिन किसी भी कीमत पर अपना सर्वस्व देना नहीं चाहती-

बासा लेहो बासा लेहो नन्हुवाँ से
राम ठाकुर हो ठाकुर।
बकसि हौ दे हो सिर के सिन्दूर हौ,
ठाकुर गोदी के बलकबा।

शीतला से दया की भीख माँगती है-

बाँझ मरै छी हो मैया, खल खल हँसैये सपूती हे,
लैये करमा लोटाय, महामाया दया करू हे।

नारी सब कुछ का अभाव सह सकती है, मगर 'माँग-कोख' का नहीं। वह कहती है-

भाइ बाप गारि हे सासु, सरिकए हे गमौलिये,
कोखिया के गरिया है सासु, सरलोद न जाइ हो।

विषहरि से याचना करती है-

पहिले जे माँगलौं हे विषहरि, सिर के सिन्दूर।
तखन जे माँगलौं हे विषहरि, अन धन सम्पति।
तखन जे माँगलौं हे विषहरि, भरि कोर पुत्र
जौं पुत्र दीह विषहरि छीनि जनु लीह
बाँझ पद छुटतै विषहरि मरोछी हैतै ना।

-विषहरि का गीत

इसी प्रकार-

केओ माँगे अन धन हे माता
केओ सिर के सिन्दूर,
हमहूँ अभागलि हे माता माँगौं कोखि पुत्र।
जौं पुत्र देब' विषहरि हरि जनु लीह
बाँझ पद छुटतै विषहरि मरोछी ना।

और भी,

तोहरो सिंगार विषहरि लाबा और दूध,
हमरो सिंगार विषहरि, गोदी भरि पूत।
तोहरो सिंगार विषहरि, अरहूल फूल,
हमरो सिंगार विषहरि सिर के सिंदूर।

स्त्रियों की श्रद्धा मात्र गंगा पर नहीं, क्षेत्रीय नदी कमला और बलान के प्रति भी उजागर होती है-

पाठी दए बोधबन्हि मैया कमलेश्वरी,
परबा दए बोधबन्हि बलान।
गुगुल धूप दैबेन्हि मैया कमलेश्वरी
अगरबती देबन्हि बलान।

ये गीत स्त्रियों के द्वारा गाए गए हैं जिसमें जीवछ, कबूतरामाय, ज्वालामुखी, शीतला, विषहरि, गंगा, कमला, भगवान-कृष्ण, राम आदि बहु देवी-देवता के प्रति तो श्रद्धा निवेदित है ही, जहाँ बहुदेवोपासना प्रस्तुत होती है, साथ-साथ ताजिया के गीत देखकर साम्प्रदायिक उदारता की भी व्यंजना हुई है। ताजिया गीत का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

हाय-हाय हजरत माथे जल सिहली टोपी,
फातमा माथे हे धनुस बे हाय।
दियौ-दियौ आहे फातमा, बेटा कुरबानी,
तीर धनुसबे चलै जे हे हाय।
एक ओर गेलै फातमा, दोसर ओर गेलै,
तीसरे में बेटा कुरबानी हाय।
किनका माथे हे जस सिहली टोल,
किनका माथे हे धनुसबे हाय।

इनकी भाव विह्वलता ही है कि मुहमाद साहब की बेटी बीबी फातमा के दोनों पुत्र-हसन, हुसैन की कर्बला के मैदान में कुर्बानी में तीर-धनुष भी जोड़ डालती है।

मैथिली के इन भक्तिपरक लोकगीतों से जो बातें छनकर आती हैं उनमें सर्वप्रथम इनकी गरीबी झाँकती है, 'अनधन-सोनमा' की माँग यही दर्शाता है, पोषाहार के अभाव में 'बाँझ-मरोछ' हो जाना स्त्रियों का, अथवा लोगों का अकाल कवलित हो जाना भी व्यंजित होता है। अनुरागमयी स्त्रियों की 'माँग' सुरक्षित रहे 'गोद के बालक' किलकारी मारते रहें यही उसकी तमन्ना है। सामूहिक परिवार का चित्र उभरता है, जिसमें सासु द्वारा पुत्र वधुओं के प्रताड़ित होने की भी चर्चा हुई है।

'धूप-दीप-नैवेद्य' 'काला कंबलादि' 'चंदन', 'अक्षत-धान' 'रेशम', 'सरिसव' के साथ-साथ 'अरहूल फूल', बेलपत्र', 'हरियर बाँस', 'बँस बीर', 'गहवर', 'मंडप', 'काँति' 'कामी चीरना' 'डाला-डाली' से तत्कालीन जीवन दिखता है।

'पलँग', 'गिरमलहार', 'नथिया', 'झुमका' के माध्यम से उनकी लालसा व्यक्त होती है।

इन गीतों की भाषा प्रेषणीय है, दशरथ, जनक, सुनैना, राम-लक्ष्मण-पिता, माँ, पति-देवर आदि के प्रतीक रूप में आए हैं।

इन मैथिली लोकगीतों में इनके जीवन-दर्शन से स्पष्ट होता है कि वहाँ पूर्ण रूप से प्रवृत्ति तत्त्व विद्यमान है, भौतिक सुख-समृद्धि। घर-परिवार, पुत्र-कलम, सुख-सौख्य, धन-संपदा और नैरुज्य, और जीवन के अंत में संसार-सागर से तरने का भाव। इसलिए ये आज भी उसी श्रद्धा से गाए जाते हैं।

अध्यक्ष
हिन्दी विभाग
बी.आर.बी. कॉलेज, समस्तीपुर

वाणी एवं चरित्र

▶*प्रो० रामाश्रय प्रसाद सिंह*

वाणी एवं चरित्र मानव को विभूषित करनेवाले दो विशिष्ट गुण हैं। इनके अभाव में मानव-जीवन स्वादरहित ओर मिठास रहित हो जाता है। मानव-जीवन में ये दोनों ऐसे विशिष्ट गुण हैं जो मनुष्य को सच्चा और सही बनाते हैं। वाणी से ही मनुष्य की महत्ता सिद्ध होती है। विमल वाणी व्यक्ति के व्यक्तित्व को विशिष्ट बनाती है, उसके वैशिष्ट्य को बिम्बित करती है। वाणी से ही व्यक्ति का आन्तरिक चरित्र झलकता है। वाणी बतलाती है कि व्यक्ति किसी धरातल का है। व्यक्ति के चरित्र एवं स्वभाव को खोल कर दिखलाने वाली वाणी ही है। वाणी वस्त्र है जो मानव-मन को सुसज्जित करती है, उसका सुन्दर शृंगार करती है। संस्कृत में एक सुभाषित मिलता है, जिसका अर्थ है कि वाणी ही व्यक्ति को सुशोभित करती है-

नीति है कि मनस्यन्यद् वचस्यन्यत् कार्यमन्यन्महात्मनाम्। मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्। अर्थात् महात्मा का लक्षण है कि मन, वचन और कार्य में समानता हो। इसके विपरीत दुरात्मा लोग मन में कुछ सोचते हैं, बोलते कुछ हैं और भिन्न कार्य करते हैं। इस प्रकार वाणी और चरित्र के बीच तालमेल होना उन्नति के लिए आवश्यक है। इसलिए सन्तों ने इन दोनों के नियमन पर विशेष जोर दिया है। 'रामचरितमानस' में गोस्वामी तुलसीदास ने अनेक स्थलों पर वाणी और चरित्र के सन्दर्भ में आदर्श व्याख्या प्रस्तुत की है। यह व्याख्या **प्रो० रामाश्रय प्रसाद सिंह** के शब्दों में पर्यवेषित है-

''वाण्येका समलंङ्करोति पुरुषम्।''

भारतवर्ष में वैदिक साहित्य से लेकर आजतक के साहित्य में वाणी एवं चरित्र की ही महिमा गाई गई है। वाणी के संयम से समष्टि के साथ स्नेह स्थापित होता है। वाणी का संयत समाज के साथ स्नेह-स्थापन का सुदृढ़ सोपान है; वाणी का संयम विवेक के पथ का अनुधावन है; सत्य के मार्ग का स्थायी संबल है। वाणी ईश्वर का दिया हुआ सर्वश्रेष्ठ वरदान है। वाणी परमात्मा के निकट पहुँचने का श्रेष्ठ साधन है। वाणी की विशेषता विनयशीलता में है, विनम्रता में है। सत्य बात को कहने का सही ढंग वाणी ही बतलाती है। उत्तम वाणी दुग्ध और मधु का मिश्रण है; सत्य तथा स्नेह का सम्मिश्रण है; अमृत है। सत्य तथा प्रिय वचन ही उत्तम वचन है। सत्य एवं प्रियता के साथ हितकारी वचन ही बोलना चाहिए। हमारे शास्त्रों में कहा गया है कि मनुष्य को सदा सच बोलना चाहिए। सत्य के साथ मधुरता भी होनी चाहिए और उसमें हितत्व भी होना चाहिए-

''सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातन।।''

मनुस्मृति-४.१३८.

असत्य भाषण न किया जाय, अहितकर वचन न बोला जाय, अप्रिय वाणी, कठोर वाणी न हो। किसी के मन को दुःख देनेवाला भाषण या कथन न हो। यही सनातन धर्म है, अनादिकाल से चला आनेवाला हमारा धर्म है। वाणी की मर्यादा का, वाणी के संयम का, वाणी की विशेषता का कितना सुन्दर स्वरूप झलकता है मनु

भगवान् के इस श्रेष्ठ श्लोक में। सत्य बोलो, प्रिय बोलो, अप्रिय सत्य को न बोलो, झूठी बात न बोलो! यही मानव का सनातन धर्म है।

वाणी की सार्थकता सद्वाणी में है। वाणी को सहज, सरल एवं सरस होना चाहिए। कृत्रिम वाणी, बनावटी वाणी अपनी सहजता खो देती है, अपनी सरलता खो देती है। हृदय से निकली वाणी ही सहज होकर अपने स्वरूप को व्यक्त करती है। बोझिल वाणी बौनी हो जाती है। वाणी को अलंकार नहीं चाहिए, वक्रता नहीं चाहिए। वक्रोक्ति अलंकार में भले ही वक्र (टेढ़ी) उक्ति की महत्ता मानी गई है, किन्तु वाणी को गाय की भाँति सहज और सरल होना चाहिए। गाय अपनी सहजता में ही शोभा पाती है, उसके थनों से सात्त्विक दूध तभी प्राप्त होता है, जब वह सहज और सम अवस्था में होती है। सात्त्विक श्रद्धा की सुन्दर गाय भावरूपी बछड़े को पाकर ही पेन्हाती है; उसी प्रकार श्रद्धामयी-स्नेहयुक्त वाणी भाव शिशु को पाकर ही कञ्ज की भाँति, कमल की भाँति खिल पड़ती है, प्रस्फुटित हो जाती है। जन-मन को तृप्त करना सहज वाणी का ही कार्य है। तभी तो कवियों में सौम्य सन्त श्री सुमित्रा नन्दन पंत ने अपनी एक कविता में कहा है-

"तुम वहन कर सको जन-मन में मेरे विचार।
वाणी चाहिए क्या तुझे अलंकार?"

वाग्विलास वाणी नहीं है। बनावटी वाणी, कर्कश वाणी मन को चोट पहुँचाती है। सुच्चा-सम वाणी का महत्त्व है। मधुर वचन ताप-तप्त मन को भी शीतल एवं सुखद बना देता है। रामचरितमानस में वर्णन आता है कि अशोकवाटिका में सीताजी दसकंधर रावण के त्रास, दुष्टा राक्षसिनियों के भय एवं उनकी कर्कश वाणियों से बिंध कर अपना जीवन श्रीराम वियोग में समाप्त करने के लिए तैयार हो गई थीं। उसी समय अपने मधुर वचन से अपनी अमृतमयी वाणी से हनुमानजी ने उनकी रक्षा की; उन्हें ऐसा लगा कि प्रचण्ड ताप से तपती हुई, जलती हुई धरती को धारासार वृष्टि से शीतलता और रस की प्राप्ति हुई हो।

"सीता मन बिचार कर नाना।
मधुर बचन बोलेउ हनुमाना।।
रामचन्द्र गुन बरनैं लगा।
सुनतहिं सीता कर दुख भागा।।"

-मानस- ०५.१२.४-५

वास्तव में वाणी ऐसी होनी चाहिए जो सुनने में अमृत का स्वाद और सुख दे। गोस्वामी तुलसीदास की मान्यता है कि वाणी में संजीवनी शक्ति होती है। 'मानस' के बालकाण्ड में मनु-शतरूपा प्रसंग में उन्होंने गगन-वाणी को 'मृतक जिआवनि गिरा' कहकर वाणी की महत्ता सिद्ध की है-

"मागु मागु बर भै नभ बानी।
परम गभीर कृपामृत सानी।।
मृतक जिआवनि गिरा सुहाई।
श्रवन रंध्र होइ उर जब आई।।
हृष्ट पुष्ट तन भए सुहाए।
मानहुँ अबहिं भवन ते आए।।"

-'मानस' १.१४४.६-८

अगले दोहे में 'श्रवण सुधा सम बचन' कहकर अमृतमयी वाणी का वैशिष्ट्य सिद्ध किया गया है।

वाणी स्नेह की भी होती है और अमर्ष की भी; वाणी घृणा की भी होती है और प्रशंसा की भी। वाणी मन का चिराग होती है। सद्वाणी मन में, हृदय में प्रकाश लाती है। व्यक्ति का मन जब जिस स्थिति में होता है, वाणी उसे उसी रूप में व्यक्त कर देती है। भय के समय निकलनेवाली वाणी का दूसरा रूप होता है, क्रोध के समय की वाणी का दूसरा ही रूप होता है। सन्त-मत के प्रतिष्ठापक कबीर दासजी ने भी कहा है-

"बानी ऐसी बोलिए मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करे आप भी सीतल होय।।"

अहंकार-रहित वाणी का महत्त्व है। हमें ऐसी वाणी बोलनी चाहिए जिसमें आपा अर्थात् घमण्ड और व्यंग्य न हो। जब वाणी सहज, सम एवं शीतल होगी, तभी वह दूसरे को शीतल करेगी और बोलनेवाली व्यक्ति को

भी शीतलता प्रदान करेगी। अतएव हमें सोच-समझकर वाणी का प्रयोग करना चाहिए। वाणी दर्पण है। वह हमारे मन के भाव को ही व्यक्त करती है। दर्पण जब साफ और स्वच्छ रहता है तब व्यक्ति का प्रतिबिम्ब भी साफ और स्वच्छ दिखलाई पड़ता है। उसी प्रकार का हृदय भी जब साफ और निर्मल होता है, तब उसकी वाणी हमारे मन को खोलकर रख देती है। अतः जब भी हम वाणी को व्यक्त करें तब हृदय को, मन को निर्मल एवं स्वच्छ बनाकर व्यक्त करें। यही वाणी की विमलता है।

कर्कश वाणी बोलनेवाले की संसार में, समाज में बड़ी निन्दा होती है। कर्कशा नारी घट की सारी शान्ति बिगाड़ देती है। काग को उसकी कर्कश और कठोर वाणी के चलते ही निन्दा मिलती है। सिर के ऊपर काग के बोलने से लोग भयभीत हो जाते हैं, उसे गाली देने लगते हैं। किन्तु कोयल अपनी मीठी एवं मधुर वाणी से सबका मन और हृदय जीत लेती है। अतः वाणी में मिठास एवं मधुरता अत्यन्त आवश्यक है। इसलिए रहीम कवि ने कर्कश और कठोर वाणी बोलनेवाले व्यक्ति को बड़ा कठोर दण्ड देने की घोषणा की है-

"खीरा के मुँह काटि के मलियत नोन लगाय।
रहिमन कड़ुए मुखन को चाहिए एहि सजाय।।"

खीरा के मुख पर तिक्तता होती है। उस तिक्तता से बचने के लिए लोग उसका मुख काट कर नमक लगाकर उसे मलते हैं। इससे उसकी तिताई मिट जाती है तब खीरा को खाया जाता है। रहीम कवि की मान्यता है कि ऐसे ही कड़वे मुखवाले व्यक्ति को सजा देनी चाहिए। ऐसा है कठोर एवं कर्कश वाणी बोलनेवाली व्यक्ति के लिए दण्ड-विधान है।

सम्पूर्ण रामचरितमानस में मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम के जीवन-चरित्र में वाणी की गरिमा, उनकी वाणी की मधुरता और उनकी वाणी की शीतलता को ही दिखलाया गया है। इसका तात्पर्य क्या है? तात्पर्य है कि पुरुषोत्तम बनने के लिए, श्रेष्ठपुरुष बनने के लिए वाणी एवं चरित्र की परम आवश्यकता होती है। गोस्वामी तुलसीदासजी तो श्रीराम द्वारा क्रोध की अवस्था में भी जिस वाणी को व्यक्त कराते हैं, वह प्रीति की ही वाणी होती है। एक-दो स्थलों पर श्रीराम ने क्रोध एवं अमर्ष के समय में भी जो वाणी व्यक्त की है, उसका तात्पर्य भय के माध्यम से प्रेम को ही प्राप्त करने की बात है। उदाहरण के लिए समुद्र पर क्रोध के समय भी जब वे वाणी का प्रयोग करते हैं, तब उस वाणी का उद्देश्य है- बिनु भय होहिं न प्रीत। पूरा दोहा इस प्रकार है-

"विनय न मानत जलधि जड़ गए तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति।।"

-मानस ५.५७.

यहाँ भय भी इसलिए दिखलाया जा रहा है कि समुद्र के मन में प्रीति हो। वैसे पूरे 'मानस' में श्रीराम का हर आचरण शीलयुक्त वाणी की सुगन्ध से सुवासित है। चाहे ऋषि-मुनियों से मिलन के प्रसंग हों या कोल-झील-किरातें के बच्चों के साथ बात-चीत का अवसर हो; जनकपुर में या अयोध्या में श्रेष्ठ जनों से वार्त्तालाप के अवसर हों या वन के मार्ग में ग्रामीण जनों (नर-नारी) से मिलने के प्रसंग हों या सेवक-सेविकाओं और बन्दर-भालुओं के साथ का अवसर हो, श्रीराम प्रेमयुक्त वाणी का ही, स्नेह-समन्वित वाणी का ही प्रयोग करते रहते हैं। प्रयागराज में भरद्वाजमुनि ने मार्ग पूछते समय श्रीराम की प्रेममयी वाणी का एक उदाहरण देखें-

"राम सप्रेम कहेउ मुनि पाहीं।
नाथ कहिअ हम केहि मग जाहीं।।'

-मानस २.१०८.१

श्रीराम ने बड़े प्रेम से भरद्वाजमुनि से कहा- "हे नाथ! हमलोग किस मार्ग से आगे जाएँ।" जो स्वयं सारे ब्रह्माण्ड का स्वामी है, नाथ है, वह मुनि को अपना नाथ और स्वामी कहता है। यह है श्रीराम की वाणी की विशेषता और उस वाणी की विमलता। इसी प्रकार महर्षि वाल्मीकि से वन में स्थायी निवास बनाने के लिए स्थान के सम्बन्ध में जब श्रीराम जिज्ञासा प्रकट करते हैं, उस समय भी उनकी वाणी की विशेषता का वर्णन गोस्वामीजी करते हैं-

"तब कर कमल जोरि रघुराई।
बोले बचन श्रवण सुखदाई।।"

-मानस, २.१२४.६.

इस प्रकार वाणी की विशेषता श्रवण (कान) को सुख देने में ही है। श्रीराम की वाणी ऐसी ही श्रवण सुखदायिनी वाणी है। इसीलिए परशुरामजी भगवान् श्रीराम को 'बचन-रचना-नागर' की संज्ञा देते हैं। भगवान् श्रीराम ने परशुरामजी से जो वार्त्तालाप किया, उससे उनके चरित्र की सुगन्ध ही विकीर्ण होती है। विनय, शील, करुण, प्रेम, दया आदि श्रीराम के चरित्र की विशेषताएँ हैं। तभी तो परशुरामजी श्रीराम के प्रभाव को जानकर कहते हैं-

"जय सुर बिप्र धेनु हितकारी।
जय मदमोह कोह भ्रम हारी।।
बिनय सील करुना गुन सागर।
जयति बचन रचना अति नागर।।"

-मानस, १.२८४.२-३

परशुरामजी के क्रोध करने पर भी श्रीराम जब उन्हें उत्तर देते हैं, तब भी अति विनीत, मृदु और शीतल वाणी का ही प्रयोग करते हैं-

"अति बिनीत मृदु सीतल बानी।
बोले रामु जोरि जुग पानी।।"

-मानस, १.२७८.१

श्रेष्ठ वाणी की तीन विशेषताएँ प्रमुख हैं- मृदुता, शीतलता और सुन्दरता। यदि वक्ता के पास मधुरता के साथ शीतलता और कहने का सुन्दर ढंग हो तो वह विपरीत परिस्थितियों को भी अपने वश में कर लेता है, उन्हें अनुकूल बना लेता है। बात-बात में बात बन भी जाती है और बात-बात में बात बिगड़ भी जाती है। कहा गया है- 'बातन हाथी पाइए, बातन हाथी पाँव।' विनम्रता और मधुरता से बोलने से दान में हाथी मिल जाता है और कहीं कठोर तथा कर्कश वाणी बोलते रहने से यदि बात रोग हो गया, तब पैर 'हाथ-पाँव' की तरह हो जाता है। अतएव कल्याणी वाणी, मंगलमयी वाणी बोलनी चाहिए। वाणी, मानवी वाणी शुभ, मंगलमयी, मृदु और सुन्दर होती है। किन्तु क्रोध की अवस्था में उच्चरित वाणी साँप की तरह विषैली होती है। उस समय अपशब्दों का विष ही व्यक्ति उगलने लगता है। शान्त और सम वाणी मंगलमयी होती है, कल्याणमयी और शुभ होती है, किन्तु कठोर एवं क्रूर वाणी अमंगलमयी और अशुभ होती है। अतएव हमें सोच-समझकर सुगम, सरल, सहज, शुभ और मृदुमंजु वाणी का प्रयोग करना चाहिए। हमारी वाणी को परस्पर की प्रीतिभावना से युक्त होना चाहिए। हमारी वाणी यज्ञमयी, मंगलमयी, कल्याणमयी और हितमयी होनी चाहिए। उसे सौहार्द की स्थापना करनी चाहिए। 'श्रीमद्भागवत महापुराण' में यमलार्जुन-प्रसंग में कुबेर के दोनों पुत्रों- नलकूबर और मणिग्रीव ने कृष्णभगवान् से यही प्रार्थना की कि प्रभो! हमारी वाणी आपके मंगलमय गुणों का वर्णन करती रहे। हमारे कान आपकी रसमयी कथा में लगे रहें। हमारे हाथ आपकी सेवा में और मन आपके चरण-कमलों की स्मृति में रम जाय। यह संपूर्ण जगत् आपका निवास-स्थान है। हमारा मस्तक सबके सामने झुका रहे। सन्त आपके प्रत्यक्ष शरीर हैं। हमारी आँखें उनके दर्शन करती रहें-

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां
हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः।
स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे
दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम्।।"

-'श्रीमद्भागवत महापुराण'-१०.१०.३८

'अकबर-वीरबल-विनोद' का प्रसंग वाणी की महत्ता का ही प्रसंग है। वीरबल वाणी का धनी व्यक्ति था। इसीलिए वीरबल की वाणी की विशेषता घर-घर में प्रचलित है। बात के कहने के ढंग पर ही कवियों, चारणों और भाँटों को राजाओं की ओर से जमीन, ऐश्वर्य वितरित किये जाते थे। यहाँ तक कि राज्य भी मिल जाते थे। अतः वाणी का मानव-जीवन में बड़ा महत्त्व है।

वाणी का व्यक्ति का चरित्र से बड़ा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। अच्छी वाणी से ही व्यक्ति का चरित्र खिलता

है। जिस प्रकार सूर्योदय होते ही सरोवर में कमल विकसित हो जाता है और उसकी सुगन्ध सर्वत्र फैल जाती है; उसी प्रकार सद्‌वचन रूपी सूर्य के उदय होते ही चरित्ररूपी कमल विकसित हो जाता है और समाज में उस व्यक्ति की चारित्रिक सुगन्ध सर्वत्र फैल जाती है। वाणी ही सूर्य की प्रातःकालीन किरण होती है, जिससे मानव का चरित्र उद्‌भासित होता है। श्रेष्ठ पुरुष मन से अपनी वाणी को परिष्कृत करके बोलते हैं। न जितना ही निर्मल, पवित्र एवं सात्विक होगा, वाणी उतनी ही मंगलमयी, लोककल्याणमयी एवं 'शिवसंकल्प' वाली होगी। वाणी का प्रभाव दूर-दूर तक जाता है। वाणी द्वारा असंभव कार्य को भी संभव बना दिया जाता है। अतएव इसका प्रयोग हमें सूझ-बूझ और सावधानी से करना चाहिए। हमें परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिए कि हमारी वाणी लोककल्याणकारी बने, हमारी वाणी मन्त्रात्मक हो, शिवसंकल्पवाली हो। जहाँ मधुर और मीठी वाणी मित्रता स्थापित करती है, समाज में सौहार्द-सौमनस्य स्थापित करती है, वहाँ कठोर एवं कटुवाणी और वैमनस्य को जन्म देती है। वेदों में कहा गया है कि हमारी जिह्वा के अग्र भाग पर मधु हो, जिह्‌वा के मध्य में भी मधु हो और उसके मूल में भी मधु हो। इसका क्या तात्पर्य है? इसका तात्पर्य है कि हमारी वाणी मधुर, सरस और मिठास से पूर्ण हो। जहाँ से वाणी निकल रही है, वह स्रोत मधुर हो। अतः वेद-वाणी है कि माधुर्य हमारे वचन में, कर्म और हमारे हट व्यवहार में हो। हमारे जीवन के व्यवहार की जननी वाणी है। हम परिवार में हों या समाज में; देश में हों या विदेश में, मधुर वाणी का हर स्थान पर महत्त्व है। हमारे व्यवहार की सबसे साधिका वाणी ही है। अतएव हमारे जीवन में मधुर वाणी का सबसे अधिक महत्त्व है।

रामचरितमानस के प्रायः हर प्रसंग में वाणी की विशेषता एवं महत्ता देखने योग्य है। जनकपुर का एक छोटा प्रसंग है। श्रीराम अनुज लक्ष्मण के साथ नगर-भ्रमण के लिए निकले हैं। जब यह समाचार मिलता है कि दो राजकुमार नगर देखने के लिए आए हैं, तब सभी लोग, नर और नारी, बालक और वृद्ध अपने सारे काम-धाम को छोड़कर उनके रूप-दर्शन हेतु उनके पीछे चल पड़ते हैं। युवतियाँ भी महलों के झरोखों पर चढ़कर नयन फल लेने लगती हैं। वे मृदुवाणी में प्रेम के साथ बोलती हैं और राम-लक्ष्मण की प्रशंसा करती हैं-

"कहहु सखी अस को तनुधारी।
जो न मोह यह रूप निहारी।।
कोउ सप्रेम बोली मृदु बानी।
जो मैं सुना सो सुनहु सयानी।।"

-मानस १.२२०.१-२

नारी की वाणी का बड़ा महत्त्व होता है। प्रेममयी मृदुवाणी से ही नारी अपने दाम्पत्य जीवन और पारिवारिक जीवन को स्वर्ग बना सकती है। फिर श्रीराम-लक्ष्मण पूर्व दिशा की ओर बढ़ते हैं, जहाँ धनुष-यज्ञ-स्थल हैं। परिवार में बच्चों को प्रेम की वाणी बोलने की शिक्षा देनी चाहिए। गोस्वामीजी इस अवसर पर बच्चों की वाणी के संबन्ध मे लिखते हैं-

सिसु सब राम प्रेम बस जाने।
प्रीति समेत निकेत बखाने।।

-मानस- १.२२४.१.

श्रीराम-लक्ष्मण उन बालकों की प्रीतियुक्त वाणी से गद्‌गद हो उठते हैं। उन्हें गुरुदेव विश्वामित्र के पास लौटना है। बच्चे साथ नहीं छोड़ रहे हैं। अब श्रीराम किस प्रकार की वाणी का प्रयोग करते हैं, इसे देखें-

कहि बातें मृदुमधुर सुहाई।
किए बिदा बालक बरिआई।।

-मानस- १.२२४.८.

यहाँ वाणी की तीन विशेषताएँ उल्लिखित हैं- मृदु, मधुर और सुहाई। 'मृदु' में कोमलता एवं शीतलता है; 'मधुरता' में अमृतमयता का माधुर्य एवं स्वाद है तथा 'सुहाई' में सुन्दरता है, शोभनगुण है। तात्पर्य यह है कि वाणी कोमल हो, शीतल हो, अमृतमय हो और सुन्दर हो।

कपट और कठोर वाणी धनुष के बाण धनुष के बाण की भाँति वेधती है। मन्थरा और कैकेयी की वाणी

कपट एवं कठोरपन की वाणी है। कैकेयी की वाणी कठोरता का प्रतीक है। रामचरितमानस में गोस्वामीजी ने रानी कैकेयी की वाणी के संबन्ध में धनुष और बाण का रूपक देकर समझाया है। श्रीराम जब विमाता कैकेयी के महल में जाते हैं, तब पूछते हैं कि पिताजी की स्थिति ऐसी क्यों हुई है? माता कैकेयी जिस ढंग से उत्तर देती है, जो विषयुक्त वाणी बोलती है, उसका उदाहरण देखें-

निधरक बैठि कहै कहु बानी।
सुनत कठितना अति अकुलानी।।
जीभ कमान बचन सर नाना।
मनहुँ महिप मृदुलच्छ समाना।।
जनु कठोरपनु और सरीहू।
सखिइ धनुषविद्या बर वीरू।।
सबु प्रसंगु रघुपतिहि सुनाई।
बैठि मनहुँ तनु धरि निठुराई।।

- मानस २.४०.१-४

रानी कैकेयी बेधड़क बैठी हुई बातें कर रही है। उनकी बातें सुनकर कठोरता भी अत्यन्त आकुल हो उठी। कैकेयी की जीभ ही धनुष है और उनके द्वारा बोले गए अनेक प्रकार के वचन ही बाण हैं। राजा दशरथ ही कैकेयी के कोमल निशाना हैं, लक्ष्य हैं। उत्प्रेक्षा अलंकार द्वारा गोस्वामीजी बतलाते हैं मानो कोई श्रेष्ठ वीर कठोरपन का शरीर धारण कर धनुष-विद्या सीख रहा है। सारे प्रसंगों को श्रीरामजी से सुनाकर इस भाँति बैठी रही मानो निष्ठुरता ही शरीर धारण कर बैठी है।

रामचरितमानस में कपटयुक्त वाणी के उदाहरण कालनेमि और कपटमुनि के प्रसंग में भी मिलेंगे। कालनेमि की कपटपूर्ण वाणी के भ्रम और भुलावे में परम वैराग्य के प्रतीक हनुमानजी भी छले जाते हैं, भले ही अन्त में में कालनेमि को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ता है। इससे हमें दो शिक्षाएँ मिलती हैं। प्रथम तो यह कि कपट युक्त वाणी से बड़े-बड़े वैरागी तथा धीर व्यक्ति भी ठगे जाते हैं और दूसरी बात यह कि कपटयुक्त वाणी बोलनेवाले की पोल अन्त में खुल जाती है तथा उसे मौत को अंगीकार करना पड़ता है। गोस्वामीजी ने लिखा भी है-

खलउ करहिं भल पाइ सुसंगू।
मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू।।
लखि सुबेष जग बंचक जेऊ।
बेष प्रताप पूजिअहिं तेऊ।।
उधरहिं अंत न होइ निबाहू।
कालनेमि जिमि रावन राहू।।

- मानस १.६.४-६.

दूसरा प्रसंग है कपटमुनि का। उसका नाम ही है कपट करनेवाला मुनि। भानुप्रताप के प्रसंग में कपट मुनि की कथा आती है। लोभ-शूकर के फेरे में पड़कर धर्मात्मा राजा प्रतापभानु कपटमुनि की चाल को समझ नहीं पाता और अन्त में उसे राक्षराज रावण बनना पड़ता है। कपटमुनि वाणी को उसकी मृदु वाणी को भूपति प्रतापभानु न समझ सके क्योंकि लोभ ने उनकी विवेक-बुद्धि पर घना आवरण डाल दिया था। कपटमुनि ने जो वाणी कही, उसके विषय में भक्तवर तुलसीदाजी कहते हैं-

कपट बोरि बानी मृदुल बोलेउ जुगुति समेत।
नाम हमार भिखारि अब निर्धन रहित निकेत।।

- मानस १.१६० दोहा

कपट में बोर कर, कपट में जल से भिंगोकर युक्ति के साथ कपटमुनि ने मृदु वाणी कही। जब कोई वक्ता स्वार्थ से वशीभूत होकर बदले की भावना से श्रोता के समक्ष बनावटी बातें, चमत्कार की बातें कहने लगे तब सावधान हो जाना चाहिए, अन्यथा उसका नाश या पतन हो जाता है। राजा प्रतापभानु कपटमुनि की कपटयुक्त वाणी से दूसरे जन्म में राक्षस हो गया। इसलिए गोस्वामी तुलसीदास इस प्रसंग की फलश्रुति देते हुए हमें सावधान करते हैं-

"तुलसी देखि सुबेषु भूलहिं मूढ़ न चतुर नर।
सुंदर केकिहि पेखु बचन सुधासम असन अहि।।"

-मानस १.१६१ (ख) दोहा

गोस्वामी की मान्यता है कि सुन्दर वेष देकर मूढ़ मोहित हो जाते हैं, किन्तु चतुर नर नहीं। मोर को देखो, वह सुन्दर है, अमृत-सी वाणी है, पर साँप को खा जाता है। इस दोहे में दो बातों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट

किया गया है कि वेष और वाणी जब अधिक चमत्कारी और आकर्षक प्रतीत हों तो उनसे सावधान रहने की आवश्यकता है। मयूर कितना सुन्दर, कितना आकर्षक है और उसकी वाणी कितनी मधुर तथा सरस है। उसे देखकर और उसकी अमृत-सी वाणी सुनकर कौन समझेगा कि वह साँप खाता है।

इन सब उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि मानव-जीवन में वाणी और चरित्र का बड़ा महत्त्व है। वाणी एवं चरित्र का बड़ा घनिष्ठ संबन्ध है। वाणी से ही व्यक्ति के चरित्र का मूल्य आँका जाता है। वाणी व्यक्ति के लिए विभूति है, यह मंगल एवं मोद की प्रसूति है। वाणी में जब मन और कर्म का सम्मिलन होता है, तब जीवन में ऋजुता आती है, एक ऐसी ऋजुता जो ऋतु-पथ की अनुगामिनी बन जाती है; एक ऐसी सरलता जो सत्य के मार्ग पर, स्नेह-सौहार्द के मार्ग पर चलने को विवश हो जाती है। उस समय सबकुछ सीधा हो जाता है, सरल और तरल हो जाता है। स्वभाव की सरलता आ जाती है, एक अलौकिक शुभ्रता आ जाती है। गोस्वामीजी की मान्यता है-

'सूधे मन, सूधे बचन, सूधी सब करतूति।
तुलसी सूधी सकल बिधि, रघुबर-प्रेम-प्रसूति।।"

-दोहावली १५२.

सचमुच वाणी से ही वृत्त की, चित्त की और हित की सारी चीजें प्रकट हो जाती हैं। तब व्यक्ति वर्ण से, वर्ग से, वैभव से, जाति से ऊपर उठ जाता है। वह केवल मनुष्य रह जाता है, उसका 'मानुष-भाव' सुरक्षित हो जाता है। वह साधु पुरुष कहलाने लगता है, गीता के शब्दों में वह 'स्थितप्रज्ञ' बन जाता है। उसका व्यक्तित्व निखर जाता है। उसका चरित्र जाति और देश की सीमा को लाँघ जाता है। वह कपास बनकर, वस्त्र बन कर सबके छिद्र को ढँक लेता है। गोस्वामीजी कहते हैं-

"साधु चरित सुभ चरित कपासू।
निरस बिसद गुनमय फल जासू।।
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा।
बंदनीय जेहिं जग जस पावा।।"

-मानस १.१५-६.

श्रीराम चरित्र, उनकी वाणी, उनका कर्म, सब कुछ ऐसा है, जो नरश्रेष्ठ का, अबतक के मानव को मनीषा का सर्वश्रेष्ठ अवदान है, विशिष्ट दान है। श्रीराम का होकर, उनके चरित्र का अंग बनकर, उनकी वाणी का अनुचर बनकर व्यक्ति शब्द के सच्चे अर्थ में व्यक्ति बन जाता है, मानव योनि को सार्थक कर लेता है। श्रीराम के साथ चलना मनुष्यता के पीछे चलना है, आर्यत्व के पीछे चलना है, ऋतु, धर्म एवं सत्य के पीछे चलना है। श्रीराम का चरित्र, श्रीराम का वृत्त शील-वृत्त का शुभ्र आनन्द का फल है। चरित्र का घनिष्ठ संबन्ध सदाचार से है और श्रीराम सदाचार के सद्विग्रह हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामायण' नहीं लिखी, 'रामचरितमानस' लिखा, श्रीराम का पूरा चरित लिखा, उनका आचरण लिखा, उनके सत्कर्म एवं उनके सद्गुण लिखे, श्रीराम का धर्म लिखा। श्रीराम के होने का अर्थ है, सबका होना, सबकुछ होना; हिन्दू होना, मुसलमान होना, ईसाई, सिक्ख, यहूदी, पारसी होना, खालिस इन्सान होना। चरित्र एवं वाणी जब एकाकार होते हैं तब मनुष्यता, दिव्यता, ऋजुता अपने सही और सहज रूप में प्रकट होती है। तब मानव का जो भी शुभ्र है, शुचि है, शिव है, वह प्रकट हो जाता है। वह व्यक्ति राममय हो जाता है, वह विराट् एवं विभु बन जाता है। जीव शिव हो जाता है।

वाणी एवं चरित्र मानव की जीवन-सरिता के दो शुभ्र एवं सुदृढ़ किनारे हैं, जिनके बीच से प्रवाहित होते हुए ही जीव अपने गन्तव्य को पा सकता है, अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। अपना सर्वस्व समाज को, संसार को समर्पित करके ही अपनत्व को पाया जा सकता है। मेघ सबकुछ देकर धरती का अभिन्न अंग बन जाता है, नदियाँ अपना आकाश को दे देता है और आकाश वायु के सहयोग से मेघ बनकर धरती को दे देता है। यह देना ही चरित्र है, यह त्याग ही यज्ञ है। यह सारी सृष्टि ही यज्ञ-चक्र पर आधारित है। मानव का जीवन यज्ञमय ही है। छांन्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है-

"अथ खलु क्रतुमयोऽयं पुरुषो
यथाक्रतुरस्मिंल्लोके पुरुषो भवति।"

-छान्दोग्य उपनिषद् ३.१४.१

श्रीमद्भगवद्गीता में भी 'अहंक्रतुः' 'अहं यज्ञः' कहा गया है। आत्मसमर्पण रूप यज्ञ करने से मानव को सर्वोच्च स्थिति प्राप्त होती है। श्रीराम का समस्त जीवन का यज्ञमय, सेवाय और स्नेहमय है। यज्ञ का अर्थ ही है देना, दान। यज्ञ ही चरित्र बन जाता है, यज्ञ ही वाणी, पवित्र वाणी बन जाता है। यह चरित्र ही है जो पावन मन्त्र बनकर होता, हवि और आहुति बन जाता है। काश, आज के युग में, आज भारत में हमारा चरित्र हमारा मन, हमारा कर्म, हमारा वचन ऐसा ही पावन यज्ञ बन जाता, श्रीराम का आदर्श हमारा लक्ष्य हो जाता तो भारत अतीत का दिव्य भारत बन जाता, हम फिर विश्व में शिखर पर आरूढ़ हो जाते। श्रीराम का आदर्श अपनाकर ही हम विश्व में पूज्य बन सकते हैं।

बहुत पहले किसी पत्रिका में पढ़ा था- एक समय एक जिज्ञासु ने एक बुद्धिमान् व्यक्ति से पूछा- ''आपके विचार से मानव-शरीर के सबसे अच्छे अंग कौन हैं?'' ''उस बुद्धिमान् और विवेकी व्यक्ति ने उत्तर दिया- ''हृदय और जिह्वा। वह हृदय जो करुणा से भरा हो, वह जिह्वा जो सदा सत्य बोलती हो।'' जिज्ञासु ने पुनः पूछा- ''और मानव-शरीर में सबसे बुरे अंग कौन हैं?'' विवेकी व्यक्ति ने फिर उत्तर दिया- ''हृदय और जिह्वा।' जिज्ञासु ने पूछा- 'ऐसा कैसे हो सकता है?' विवेकी व्यक्ति ने उत्तर दिया- ''यह हृदय ही है जो क्रूरता से भरा हुआ है, यह जीभ ही है जो झूठ बोला करती है। क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि ये ही दो अंग निकृष्ट भी है?''

इस प्रसंग से हमें एक ही शिक्षा मिलती है कि श्रेष्ठ मनुष्य वह है जो विचार करके, सोच-समझकर बोलता है, वह अपनी जिह्वा से असत्य बात नहीं करता, झूठ नहीं बोलता। विचार हृदय से उठता है और तब जिह्वा से प्रकट होता है। भीतर का स्वभाव, अन्तर का चिन्तन और चरित्र वाणी से ही प्रकट होता है। रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास ने श्रीराम को 'सत्य-संघ पालक श्रुति-सेतु' की संज्ञा दी है। उन्हें 'सत्य ब्रत धरम रत सब कर सील सनेहु' कहकर पुकारते हैं। श्रुति की मर्यादा के रक्षक हैं श्रीराम और सत्य-सन्ध हैं। महर्षि वाल्मीकि ने तप और स्वाध्याय में लगे हुए विद्वानों में श्रेष्ठ मुनिवर नारदजी से पूछा- 'इस समय इस संसार में गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ, उपकार माननेवाला, सत्यवक्ता और दृढ़प्रतिज्ञ कौन है? चरित्र एवं सदाचार से युक्त, समस्त प्राणियों का हितसाधक, विद्वान्, सामर्थ्यशाली और एकमात्र प्रियदर्शन (सुन्दर) पुरुष कौन है? मन पर अधिकार रखनेवाला, क्रोध को जीतनेवाला, कान्तिमान् और किसी की भी निन्दा नहीं करनेवाला कौन है? तथा संग्राम में कुपित होने पर किससे देवता भी डरते हैं?-

''को न्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः।।
चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः।
विद्वान् कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः।।
आत्मवान् को जितक्रोधोद्यु तिमान् कोऽनसूयकः।
कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे।।''

-श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण् १.१.२-४

श्रीनारदमुनि ने तपस्वी वाल्मीकि से कहा- ऐसा धैर्यवान्, कान्तिमान्, महाबलवान्, मन को वश में रखनेवाले, जितेन्द्रिय, बुद्धिमान्, नीतिज्ञ, वक्ता, शोभायमान्, शत्रुसंहारक, सुन्दर, चरित्रवान् व्यक्ति इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न हुए एक श्रेष्ठ पुरुष हैं, जो राम नाम से विख्यात हैं। वे धर्मज्ञ हैं, सत्यप्रतिज्ञ हैं, यशस्वी, ज्ञानी, पवित्र, जितेन्द्रिय, मन को एकाग्र रखनेवाले, प्रजापालक और धर्म के रक्षक हैं। नारदमुनि ने चौबीस श्रेष्ठ गुणों से श्रीरामचन्द्र का नाम लिया, जो माता कौशल्य के आनन्द को बढ़ानेवाले तथा गम्भीरता में समुद्र एवं धैर्य में हिमालय के समान हैं-

''स च सर्वगुणोपेतः कौसल्यानन्दवर्धनः।
समुद्र इव गम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव।।''

-श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण १.१.१७

रामानुज, सौम्यमूर्ति, रामभक्ताग्रगण्य श्री भरतजी की वाणी की भी सराहना करते हुए गोस्वामी तुलसलीदासजी अघाते नहीं। भरतजी की वाणी ही वह आदर्श वाणी है,

जिसे पुरुषोत्तम की वाणी कही जाती है। भरतजी के हृदय में सीताराम निवास करते हैं। उन्हीं के प्रेरणा से भरतजी अपनी वाणी बोलते हैं। भरतजी की वाणी को ही गोस्वामीजी श्रेष्ठ वाणी एवं आदर्श वाणी की संज्ञा देते हैं-

"सुगम अगम मृदु कठोरे।
अरथु अमित अति आखर थोरे।।
ज्यों मुखु मुकुह मुकुरु निज पानी।
गहि न जाइ अस अद्‌भुत बानी।।"

-मानस २.२६३.२-३

यह न केवल भरतजी की वाणी की विशेषताएँ है, अपितु हमारी भी वाणी कैसी होनी चाहिए, उत्तम भाषा कैसी होनी चाहिए, उसका भी वर्णन है। वाणी सुगम, अगम, मृदु, मंजु और कठोर सब प्रकार की होती है। किन्तु किस समय और कैसी वाणी बोलनी चाहिए, इसका पता हमें श्रीराम, श्री भरत, श्रीसीता, श्री लक्ष्मण श्रीमद्‌गोस्वामी तुलसीदास की वाणी से चलता है। जैसे हाथ में दर्पण है और दर्पण में हमारे चेहरे का बिम्ब। बिम्ब तो हम देखते हैं, पर उस बिम्ब को पूरा-पूरा पकड़ना चाहें तो वह हमारी मुट्ठी में नहीं आ सकता। वाणी या भाषा का यही रूप है। ऐसी ही वाणी भरतजी की है। 'मानस' के अयोध्याकाण्ड में ही भरतजी की वाणी की महत्ता एक बार और कही गयी है। भरतजी कहते हैं-

"हियँ सुमिरी सारदा सुहाई।
मानस तें मुख पंकज आई।।
बिमल बिबेक धरम नयसाली।
भरत भारती मंजु मराली।।"

-मानस २.२६६.७-८

भरतजी की वाणी की विशेषता है कि वह मंजु मराली है, कोमल हंसिनी है। हंसिनी मानसरोवर में रहती है। वाणी भी हर मानस में, हृदय में रहती है। भरतजी ने वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती, शारदा का स्मरण किया। उनके हृदय रूपी मानस से वह मुख-पंकज में आई, मुख-कमल में आई। भरतजी की वाणी में चार विशेषताएँ हैं- (क) भरतजी की वाणी विमल है, निर्मल है, पवित्र है। (ख) हंस या हंसिनी की भाँति नीर-क्षीर विवेकवाली है। (ग) उसमें धर्म-निष्ठा है। (घ) नय अर्थात् नीति है। श्रेष्ठ एवं वर वाणी के ये ही चार वैशिष्ट्य हैं। ये ही मंजु मराली रूप भारती की विशेषताएँ हैं।

इस प्रकार श्रीरामचरितमानस में वाणी एवं चरित्र की विशेषताओं का विस्तार से वर्णन है। हमें अपनी वाणी एवं चरित्र पर ध्यान देना चाहिए। वाणी एवं चरित्र ही वह सोपान है, जिस पर चढ़कर हम ऊर्ध्व संचरण कर सकते हैं और दिव्यता तथा शुचिता का, शुभ्रता एवं शिवता का वरण कर सकते हैं। अन्त में हम रूसी साहित्य के महान् कथाकार चेख़ब की एक उक्ति का उल्लेख कर अपनी वाणी को विराम देंगे, जिसमें कहा गया है-

"Be beautiful in thy face,
Be beautiful in thy dress;
But be more beautiful in thy thought,
in thy soul."

हमें तन-मन-वचन से सुन्दर, श्रेष्ठ एंव शीलवान् बनना चाहिए। हमारा मुखमण्डल सुन्दर हो, हमारे वस्त्र सुन्दर हों, पर इनसे भी अधिक सुन्दर हमारे विचार हों, हमारी आत्मा हो।

ऋतंभरा, शांतिपुरी
पो. मोतीहारी, पूर्व चम्पारण